मध्यभारतीय भाषा-चयन

संपादक

डॉ० वीरमणि प्रसाद उपाध्याय

एम० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्०, साहित्याचार्य,

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय
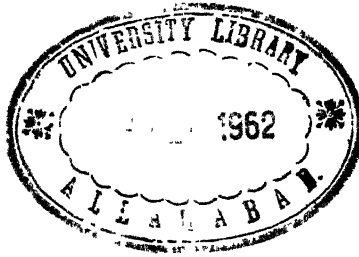
विश्वविद्यालय प्रकाशन

प्राक्कथन

प्रस्तुत चयन मध्यभारतीय भाषा के विकास के तिथिक्रम और वैविध्य को ध्यान में रखकर किया गया है। एण्डर्सन के 'पालि रीडर' तथा डॉ० सुकुमारसेन के 'मिडिल इण्डो आर्यन रीडर' से इस चयन में विशेष रूप से प्रेरणा ली गयी है। अभी तक नागरी लिपि में इन मध्य भारतीय भाषाओं का उपयोगी संग्रह एक ही जगह नहीं किया गया था। इसी कमी की पूर्ति के लिए प्रस्तुत चयन किया गया है। स्पष्ट रूप से इसके पीछे भारतीय भाषा के एम०ए० में अपेक्षित ज्ञान की सामग्री देना है। इसीलिए इसके प्रारम्भ में मध्य भारतीय भाषा के विकास का संक्षिप्त क्रम बतलाया गया है। पालि का क्रमिक विकास अधिक ब्योरे में बतलाया गया है कि प्राकृत अपभ्रंश में उसका उस अंश तक अनुसरण ही अधिक है। जहाँ उससे आगे परिवर्तन की कोई दिशा है, वहीं उसे प्राकृत एवं अपभ्रंश में सम्बन्धित अध्याय में देने की कोशिश की गयी है। ग्रन्थ के विस्तार के भय से प्राकृत एवं अपभ्रंश का इतिहास संकेतित मात्र लिख छोड़ दिया गया है।

अन्त में कठिन शब्दों पर भाषा-विज्ञान की दृष्टि से टिप्पणी भी दे दी गयी है।

यह संग्रह गोरखपुर विश्वविद्यालय की संस्कृत परिषद् द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। इसकी पांडुलिपि तैयार करने में हमारे प्रिय छात्र करुणेश शुक्ल एवं सुशीलप्रकाश नागर ने बड़ी तत्परता से सहायता दी, इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

विश्वविद्यालय प्रकाशन के अधिष्ठाता श्री पुरुषोत्तमदास मोदी ने बहुत ही धैर्य के साथ अनेक असुविधाओं के रहते हुए भी इसे प्रकाशित कराया, इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। सामग्री के सम्पादन में हमें अपने सहकर्मियों से सहायता मिली है। उन्हें धन्यवाद देना अपने को ही धन्यवाद देना है।

हमें विश्वास है, यह संग्रह विश्वविद्यालयों में उपयोगी सिद्ध होगा।

—वीरमणिप्रसाद उपाध्याय

विषय-क्रम

१. मध्य भारतीय भाषाएँ ... १
२. पालि भाषा ... ६
३. पालिकी वर्ण संघटना ... १६
४. सन्धि ... २५
५. रूप-संघटना ... २८
६. धातु रूप ... ३९
७. शब्द-रचना ... ४७
८ अभिलेखीय प्राकृत ... ५०
९. साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ ... ५५
१०. अपभ्रंश ... ६२

पालिसंगहो

१. मायादेविया सुपिनं ... १
२. गोतमस्स उप्पादो ... ३
३. महाभिनिक्खमनं ... ५
४. महापरिनिब्बानं ... ८
५. समावत्तना ... ११
६. सम्मादिट्ठी ... १४
७. अनत्तवादो ... १५
८. धम्मपदसंगहो ... १९
९. लंकाविजयो ... २२
१०. निग्रोधमिगजातको ... २६

११. जवसकुणजातको ... ३०
१२. ससजातको ... ३२
१३. बावेरुजातको ... ३६
१४. सुप्पारकजातको ... ३८
१५. पटिच्चसमुप्पादो ... ४३
१६. धम्मचक्क-पवत्तन-सुत्त ... ४४
१७. धनिय-सुत्त ... ४५
१८. मालुङ्कपुत्त गाथा ... ४७
१९. महाप्रजापतिगोतमी गाथा ... ४८

प्राकृतापभ्रंशसंग्रहः

१. अशोकाभिलेखः ... ५१
२. अशोकस्य भब्राभिलेखः ... ५४
३. सोहगौराताम्रपत्रम् ... ५५
४. हेलियोडोरस्य बेसनगराभिलेखः ... ५६
५. खारबेलस्य हाथीगुम्फाभिलेखः ... ५७
६. वक्नपतेः मथुराभिलेखः ... ५८
७. नासिकगुहाभिलेखः ... ५९
८. कीत्तिशर्मणः पत्रं ... ६०
९. राजानुदेशः ... ६१
१०. अप्रमादरतिः भिक्षुधर्मश्च ... ६३
११. अहिंसा ... ६५
१२. महावीर-जन्म ... ६६
१३. मूलदेव-कथा ... ६७
१४. कक्कुकाभिलेखः ... ६९
१५. महावीरस्य परिव्रजनम् ... ७१
१६. वसुदत्तकथा ... ७३

१७. स्वप्नवासवदत्तम्	...	७७
१८. अभिज्ञान शाकुन्तलम्	...	८१
१९. गाहासत्तसई	...	८४
२०. पाहुडदोहा	...	८७
२१. भविसयत्तकहा	..	८८
२२. वज्जालग्गम्	...	८९
२३. सन्देशरासकम्	...	९०
२४. कीर्त्तिलता	...	९२
२५. प्राकृत पैङ्गलम्	...	९३
२६. रत्नावली	...	९६
२७. कर्पूरमञ्जरी	...	९८
२८. गउडवहो	...	१०१
२९. मृच्छकटिकम्	...	१०३
३०. अपभ्रंशमुक्तकसंग्रहः	...	१०८
३१. रावणवहो	...	११०
टिप्पणी	...	१११

१

मध्य भारतीय भाषायें :

१.०–भारोपीय भाषा परिवार में भारतीय ईरानी शाखा एक प्रमुख शाखा है और इसमें भारोपीय भाषा परिवार का प्राचीनतम साहित्य सुरक्षित है। इस भारतीय ईरानी शाखा की तीन उपशाखायें हैं—

(१) भारतीय आर्य शाखा,

(२) ईरानी शाखा,

(३) दर्दी शाखा।

भारतीय आर्य शाखा का ऐतिहासिक विवेचन करते समय हमें उसकी तीन अवस्थायें दृष्टिगोचर होती हैं—

(१) प्राचीन आर्य भाषाकाल, जिसके अन्तर्गत वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत एवं वे लुप्तप्राय विभाषायें आती हैं जिनका उत्तराधिकार बाद की कुछ प्राकृतों ने लिया है।

(२) मध्य भारतीय भाषाकाल, जिसके अन्तर्गत पालि, प्राकृत (अभिलेखीय साहित्यिक प्राकृत, नियाप्राकृत, खोतानी प्राकृत) तथा अपभ्रंश एवं अवहट्ठ भाषायें आती हैं।

(३) आधुनिक आर्य भाषाकाल जिसमें महाराष्ट्री, कोंकणी, सिंहली, गुजराती, पंजाबी, उड़िया, बंगला, असमिया, नेपाली, नेवारी, मैथिली, भोजपुरी, मगही, अवधी (उत्तरी, मध्य-बघेली, दक्षिणी-छत्तीसगढ़ी) ब्रज, कन्नौजी, बुन्देली, मालवी, नीमाड़ी, राजस्थानी, लँहड़ा, गढ़वाली, कुमायूँनी, कौरवी (खड़ी बोली), हरियानी, प्रभृति भाषायें और विभाषायें आती हैं। यहाँ हम

मध्य भारतीय भाषा का ही विवेचन करने जा रहे हैं। तिथि-क्रम के अनुसार ईसा से ४०० वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के बाद लगभग १००० वर्ष तक मध्य भारतीय भाषाओं का समय कहा जा सकता है, यद्यपि इसके बाद भी अवहट्ठ में साहित्यिक रचना होती रही है। मध्य भारतीय भाषायें आधुनिक आर्य भाषाओं की पूर्ववर्त्तिनी होती हुई भी संघटना में उनसे तीन मानों में भिन्न हैं। पहला तो यह है कि मध्य भारतीय भाषाओं की वर्ण-संघटना संस्कृत से बिलकुल ही विलग है, जब कि आधुनिक आर्य भापाओं की वर्ण-संघटना पर संस्कृत की वर्ण-संघटना का गहरा प्रभाव सांस्कृतिक पुनरुत्थान के कारण पड़ा है और उसमें दो संघटनाओं के संश्लेष से नयी संघटना का प्रादुर्भाव हुआ है। दूसरा यह कि आधुनिक आर्य भाषाओं में तिङन्त रूप का स्थान बिलकुल ही कृदन्त ने ले लिया है, जब कि मध्य भारतीय आर्य भाषा में तिङन्त के अवशेष काफी मात्रा में हैं, और तीसरा यह कि शब्द-समूह की दृष्टि से मध्य भारतीय आर्य भाषाओं में संस्कृत से शब्द ज्यों के त्यों लेने की प्रवृत्ति प्रायः नहीं के बराबर है, जब कि आधुनिक आर्य भाषाओं का शब्दकोश का अधिकांश भाग संस्कृत शब्दों से ही बना है। प्राचीन आर्य भाषा से मध्य भारतीय आर्य भाषायें वर्ण-संघटना और रूप-संघटना दोनों में नयी दिशा की ओर संकेत करती हैं। वर्ण-संघटना में ये संयुक्त व्यंजनों की संघटना में अधिक समीकृत है और रूप-संघटना में ये वैरूप्य से सारूप्य की ओर जाने लगी है।

१.१—मध्य भारतीय आर्य भाषा के भी तीन काल विभाजित किये जा सकते हैं—पूर्व मध्य भारतीय आर्य भाषाकाल, जिसका समय ४०० ईसा पूर्व से लेकर ईसा तक माना जा सकता है और जिसके अन्तर्गत पालि तिपिटक एवं अशोक के अभिलेखों

की भाषा का परिगणन किया जा सकता है; दूसरा—द्वितीय मध्य भारतीय भाषाकाल जो ईसा से लेकर ईसा के ५०० वर्ष तक माना जा सकता है और जिसके अन्तर्गत शक, सातवाहन, एवं कुषाण अभिलेखों की भाषा, निया प्राकृत, बौद्ध संस्कृत एवं साहित्यिक प्राकृत भाषायें गिनाई जा सकती हैं। इसमें अपभ्रंश का प्रारम्भिक युग भी आता है। तीसरा—तृतीय मध्य भारतीय भाषा काल ५०० वर्ष ईसा से लेकर १००० के बीच का कहा जा सकता है और इसके अन्तर्गत बाद की कृत्रिम साहित्यिक प्राकृत भाषाओं तथा अपभ्रंश एवं अवहट्ठ भाषाओं का परिगणन किया जा सकता है। एक बात स्मरण रखने योग्य है कि हमें अभिलेखों की भाषा को छोड़कर जिन अन्य भाषा के लिखित रूप मिलते हैं, वे सर्वांश में विश्वसनीय नहीं हैं। उनमें मनमाने ढंग से परिवर्त्तन समय-समय पर होते रहे हैं, साथ ही उनमें भाषा का बोला जानेवाला रूप इतना नहीं है, जितना उसका बँधा हुआ कृत्रिम रूप। यही कारण है कि भौगोलिक दृष्टि से इन भाषाओं का विभाजन जो वररुचि ने 'प्राकृत प्रकाश' में किया है वह बहुत अंश तक सही होते हुए भी बाद के इतिहास को ध्यान में रखते हुए कहीं-न-कहीं अधूरा लगता है।

१.२—मध्य भारतीय भाषा का सबसे पहला व्याकरण 'प्राकृत प्रकाश' है, जिसके रचयिता वार्त्तिककार वररुचि से भिन्न है और इनका समय ईस्वी की पहली शताब्दी में निर्धारित किया जाता है। मार्कण्डेय के प्राकृत-सर्वस्व में भरत, शाकल्य और कोहल ये तीन नाम प्राकृत वैयाकरणों के मिलते हैं, किन्तु इनके व्याकरण मिलते नहीं हैं। इस 'प्राकृत प्रकाश' पर अलंकार शास्त्र के रचयिता भामह की टीका 'मनोरमा' मिलती है। उसकी दूसरी टीका 'प्राकृत-मंजरी' भी मिलती है। दूसरा प्रसिद्ध व्याकरण चंड का 'प्राकृत लक्षण' है। होयर्नले ने चंड को वररुचि और

हेमचन्द्र से पुराना माना है, परन्तु चण्ड ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि मैं यह ग्रन्थ "वृद्धमतात्" तैयार करना चाहूँगा, तथा उन्होंने महाराष्ट्री, जैन महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैन शौरसेनी इन चारों के वर्णन दिये हैं। इससे यह द्योतित होता है कि वे वररुचि के परवर्त्ती हैं। प्राकृत पर तीसरा प्रसिद्ध व्याकरण हेमचन्द्र द्वारा रचित है। इसका समय १२ वीं शताब्दी है। हेमचन्द्र ने इस व्याकरण पर दो टीकाएँ लिखी हैं, वृत्ति एवं लघुवृत्ति। एक तरह से वररुचि और चण्ड दोनोंके काम को ये पुष्ट करनेवाले हैं। प्राकृत का चौथा व्याकरण 'संक्षिप्त सार' है, जो क्रमदीश्वर की रचना है। क्रमदीश्वर ने इस पर स्वयं टीका लिखी है। पाँचवाँ व्याकरण मल्लिनाथ के पुत्र त्रिविक्रम-देव की रचना है। त्रिविक्रमदेव ने हेमचन्द्र को ही अपना प्रमाण माना है। इनका समय १३ वीं शताब्दी है। प्राकृत भाषा का अन्तिम महत्त्वपूर्ण व्याकरण मार्कण्डेय कवीन्द्र का 'प्राकृत सर्वस्वम्' है, इनका समय १७वीं शताब्दी है। उन्होंने महाराष्ट्री, जैन महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैन शौरसेनी के अतिरिक्त अन्य प्राकृत बोलियों के नामों का भी विवरण दिया है। इन मुख्य व्याकरणों के अलावा रामतर्क वागीश का प्राकृत कल्पतरु एवं अप्पय दीक्षित का प्राकृत मणिदीप भी उल्लेखनीय है। ब्लाख ने प्राकृत वैयाकरणों की मान्यता के बारे में गहरा सन्देह प्रकट किया है। पिशेल उससे सहमत नहीं हैं। आधुनिक युग के प्राकृत भाषा के मर्मज्ञों का विवेचन करते समय हम इन नामों को नहीं भूल सकते। सन् १८३६ में होयफर ने प्राकृत व्याकरण पर सबसे पहली पुस्तक प्रकाशित की। लास्सन ने १८३९ में शौरसेनी प्राकृत के अध्ययन पर आधृत प्राकृत भाषा का व्याकरण प्रकाशित किया। वेबर ने महाराष्ट्री और अर्धमागधी पर काम किया है। म्यूलर ने अर्धमागधी

पर तथा याकोबी ने जैनमहाराष्ट्रीय पर महत्त्वपूर्ण काम किया। होयर्नलेने प्राकृत व्युत्पत्ति शास्त्र के इतिहास पर कार्य किया। इसके बाद पिशेल के प्रसिद्ध व्याकरण का नाम आता है, जो निश्चय रूप से अब तक के कार्यों में बहुत ठोस कार्य है। डॉ० सुकुमार सेन का मध्य भारतीय भाषा पर तुलनात्मक व्याकरण भी एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। पालि के व्याकरणों के तीन भाग किये जा सकते हैं—(१) कच्चायन सम्प्रदाय के ग्रन्थ, बालावतार एवं रूपसिद्धि, (२) मोग्गलान सम्प्रदाय के ग्रन्थ जिसके अन्तर्गत मोग्गलान का व्याकरण 'पयोगसिद्धि', 'पद साधन' जैसे ग्रन्थ आते हैं, (३) सद्दनीति सम्प्रदाय के अन्तर्गत आनेवाले ग्रन्थ; ये सभी ग्रन्थ सिंहल में रचे गये ग्रन्थ हैं और पुराने पालि व्याकरणों पर आधारित हैं। सद्दनीति-सम्प्रदाय भर बर्मा में फैलनेवाला सम्प्रदाय है। पालि पर आधुनिक युगमें सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य गाइगर का है। जो मिनायेफ, म्यूलर और फ्रांक के व्याकरणों के बाद की रचना है और इन दोनों से अधिक सुव्यवस्थित एवं पूर्ण है। बौद्ध संस्कृत पर एडगर्टन, अभिलेखीय प्राकृतों पर मेहेन्दले तथा अपभ्रंश पर तगारे ने अधुनातन दृष्टि से जो कार्य किया है उनका भी उल्लेख आवश्यक है।

२

पालि भाषा

२.०—पहले हम पालि भाषा की संघटना पर विचार करना चाहेंगे। पालि शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में पाँच मत मुख्य रूप से दिये जाते हैं—

(१) पंक्ति> पन्ति> पत्ति> पल्लि> पालि, यह व्युत्पत्ति पं० विधुशेखर भट्टाचार्य ने दी है जो, इतनी कष्टकर और दूरकृष्ट है कि ध्वनिविकास की दृष्टि से असम्भव प्रतीत होती है।

(२) पाटलिपुत्र> पालिबोथ्र (ग्रीक नाम)> पालि पाटलिपुत्र की भाषा), यह व्युत्पत्ति मैक्स वालेसर ने दी है। चूँकि ग्रीक शब्दान्तर के आधार पर भारतीय भाषा का नाम पड़ना बड़ा अस्वाभाविक प्रतीत होता है, इसलिए यह मत भी मान्य नहीं हो सकता।

(३) पर्याय> पलियाय> पालि, यह व्युत्पत्ति भिक्षु जगदीश काश्यप ने दी है। उन्होंने इसका आधार पलियाय शब्द के अशोक के भब्रा अभिलेख में प्रयोग एवं स्वयं पालि तिपिटक में प्रयोग माना है। परन्तु पलियाय से पालि, यह व्युत्पत्ति भी बहुत दूराकृष्ट है। (४) चौथा मत पल्ली (ग्राम) को पालि की व्युत्पत्ति मानता है, पर पालि भाषा नगर की भाषा नहीं थी, इसमें कोई निश्चित प्रमाण जबतक नहीं मिले, तबतक यह मत भी मान्य नहीं हो सकता। (५) अन्तिम मत √पा + लि या √पाल् + इ ने पालि की व्युत्पत्ति बतलाता है। इनके अनुसार पालि शब्द थेरवाद सम्प्रदाय की धर्मनिधि के रक्षक माध्यम के लिये

प्रयुक्त हुआ। यह मत सबसे अधिक समीचीन जान पड़ता है।

२.१ इस पालि भाषा के सम्बन्ध में दूसरा विवाद इसके भौगोलिक जन्मस्थान के बारे में है। (१) सिंहल की अनुश्रुति में पालि मगध की भाषा है। वहाँ इसे मागधिक भाषा कहा गया है। और मागधी को इसीलिए वहाँ मूल भाषा भी कहा गया है। बुद्धघोष ने चुल्लवग्ग की टीका में इस ओर स्पष्ट रूप से संकेत किया है। इस मत के विरुद्ध अभिलेख के प्रमाण के आधार पर ये अकाट्य आपत्तियाँ की जाती हैं—

(क) र से ल में परिवर्तन की सार्वत्रिकता पालि भाषा में नहीं पाई जाती। (ख) अकारान्त प्रातिपदिक के प्रथमा एक वचन के रूप में–ओ के स्थान पर-ए सर्वथा नहीं पाया जाता और (ग) इस भाषा में श का नितान्त अभाव है, जो साहित्यिक मागधी का एक विशेष लक्षण है।

(२) वेस्टर गार्ड और कुह्न ने पालि को उज्जयनी की भाषा माना है। उन्होंने बिना पक्ष के समर्थन में दो तर्क उपस्थित किया है—एक तो यह है कि सिंहल का पालि तिपिटक से लिया जानेवाला महेन्द्र की जन्मभूमि उज्जयिनी थी और दूसरे यह कि गिरनार की भाषा की संघटना को पालि भाषा का मेल बहुत अंश तक खाता है। फ्रांक ने भी लगभग यही निष्कर्ष निकाला है और उन्होंने विन्ध्य के पश्चिमी और मध्य भाग में पालि का जन्मस्थान स्वीकार किया है। (३) तीसरा मत ओलडेनबर्ग का है, जो उसे कलिंग की भाषा मानते हैं, वे महेन्द्र की कथा को अनैतिहासिक मानते हैं और कलिंग के माध्यम से ही सिंहल में पालि अनुश्रुति के पहुँचने पर बल देते हैं। साथ ही हाथी गुंफा अभिलेख की भाषा से सादृश्य पाकर वे अपना मत पुष्ट करते हैं। उनका समर्थन म्यूलर ने भी किया है। (४) रीजडेविड्स ने कोशल प्रदेश को पालि की उद्भव भूमि

माना है। (५) इनके विपरीत विंडिश और गाइगर ने यह मत प्रतिपादित किया है कि (i) पालि भारत के विभिन्न भागों की विभाषाओं से तत्त्व ग्रहण करके एक साहित्यिक भाषा के निर्माण का फल है। (ii) पालि तिपिटक की रचना विभिन्न संगीतियों में मौखिक अनुश्रुति के अनन्तर हुई है, जिसके कारण भाषा में अनेक परिवर्तन अपने आप हो गये हैं और (iii) पालि तिपिटक उसकी जन्मभूमि से भिन्न देश में लिखा गया है, इसीलिए पालि भाषा एक भाषा न होकर अनेक भाषाओं का मिश्रण है। पालि साहित्य की भाषा में इसी से संघटना की एकरूपता नहीं मिलती। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इसका मुख्य आधार कोई बोली थी ही नहीं। निश्चित रूप से मध्य देश की ही बोली इसका मुख्य आधार थी। दूसरी बोलियों के प्रभाव गौण रूप से इसमें पाये जाते हैं। इसमें र के स्थान पर ल और ल के स्थान पर र दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। इसी प्रकार नामरूप में ओ के स्थान पर—ए भी कहीं-कहीं मिलता है। र के साथ के संयुक्ताक्षर प्रायः समीकृत हो गये हैं, पर कहीं-कहीं मिलते भी हैं। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि पालि भाषा एकजातीय भाषा न होकर अनेक विजातीय भाषाओं के मिश्रण का परिणाम है। यह मत पालि की ऊपर स्वीकृत व्युत्पत्ति के साथ संगति भी रखता है। वस्तुतः पालि का भाषा के अर्थ में प्रयोग मुख्य न होकर गौण है।

२.२—पालि साहित्य के तीन विभाजन किये जाते हैं—(१) सम्प्रदाय, (२) सम्प्रदायेतर और (३) प्राविधिक। सम्प्रदाय-साहित्य के अन्तर्गत तिपिटक आता है, जिसके संकलनका कार्य बुद्ध की निर्वाण तिथि (४८३ ईसा पूर्व) से प्रारम्भ होकर लगभग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक चलता रहा। यह कार्य बुद्ध के निर्वाण के अनन्तर जुटी प्रथम संगीति में प्रारम्भ हुआ

और अनुमानतः विनय के पातिमोक्ख नियम एवं सुत्तपिटक के प्राचीन सुत्तों का संकलन इस संगीति में हुआ। ३८३ ईसा पूर्व में वैशाली में दूसरी बौद्ध संगीति हुई, जिसमें महासांघिक सम्प्रदाय अलग हुआ। इस संगीति में सुत्तपिटक एवं विनयपिटक का विस्तार हुआ होगा। तीसरी संगीति अशोक के राज्यकाल में हुई और उसमें तिस्समोग्गलिपुत्त ने कथावत्थुप्पकरण का पाठ किया। इससे यह ज्ञापित होता है कि अभिधम्म का संकलन इस तीसरी संगीति में हुआ। यही थेरवाद सम्प्रदाय की धार्मिक निधि बनी। इसके तीन संस्करण मिलते हैं। स्यामी लिपि में पहले यह ३९ भागों में राजा चूललोंग के द्वारा प्रकाशित हुआ, बाद में जातक, अवदान, विमान वत्थु, पेतवत्थु थेरगाथा, बुद्ध वंश तथा चरियापिटक के साथ ४५ भागों में पुनः बंकाक से यह मुद्रित हुआ। दूसरा संसकरण बर्मी लिपि में हथवड्डी प्रिटिंग वर्क्स द्वारा २० भागों में रंगून में प्रकाशित हुआ। इसमें सुत्तपिटक का दीघ निकाय भर है, शेष दोनों पिटक पूरे हैं। अभी बुद्ध की २५०० वें वार्षिक समारोह के अवसर पर बर्मी लिपि में पूरा पालि तिपिटक मुद्रित हुआ है। तीसरा संस्करण सिंहली लिपि में प्राप्य है। लंदन की पालिटेक्स्ट सोसाइटी ने रोमन लिपि में इन्हें प्रकाशित कराया। अभी हाल ही में नालन्दा इन्स्टीट्यूट ने नागरी लिपि में २० भाग पालितिपिटक के मुद्रित कराये हैं।

२.३—पालि सम्प्रदाय साहित्य के तीन प्रकार के विभाजन दक्षिण की अनुश्रुति में मिलते हैं, तीन पिटकों में, पाँच निकायों में एवं नव अंगों में। पाँच निकायों में विभाजन सबसे पुराना है। दूसरे सम्प्रदायों में इन निकायों के स्थान पर आगम मिलते हैं। अंगों में विभाजन शुद्ध रूप से रचना-रीति पर आधारित हैं, यह विभाजन है—सुत्त (बुद्ध की वार्तायें), गेय्य (गद्य एवं पद्य मिश्रित भाग) वेय्याकरण (अभि धम्म

तथा कुछ अन्य ग्रन्थ), गाथा (पद्य भाग) उदान, इतिवुत्तक, जातक (ये तीनों खुद्दक निकाय के अलग-अलग ग्रन्थ हैं)। अब्भुतधम्म (अतिमानवीय स्थितियों का वर्णन), वेदल्ल (कदाचित् वैपुल्य का थेरवाद-संवादी रूप)। पाँच निकायों में विभाजन—दीर्घ, मज्झिम, अंगुत्तर, संयुक्त एवं खुद्दक है। खुद्दक के अन्तर्गत ही विनय एवं अभिधम्म विटक आते है। पर इन दोनों विभाजनों की अपेक्षा अधिक प्रचलित और मान्य विभाजन तीन पिटकों में हैं, सुत्त पिटक, विनय पिटक एवं अभिधम्म पिटक। सुत्तपिटक में पहले केवल चार निकाय थे। यह वस्तुतः सुत्त या सुत्तान्तों का संकलन है, जिसमें बुद्ध की वार्तायें एवं उपदेश मिलते हैं। कहीं-कहीं बीच में इनमें छन्द भी मिलते हैं। वस्तुतः धम्म के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए सुत्तपिटक ही प्रमुख स्रोत है। विनय पिटक संघ के नियमों का संकलन है। अभिधम्म पिटक थेरवाद सम्प्रदाय के दार्शनिक विचारों का संकलन है।

२.४—सुत्तपिटक में पहला निकाय दीघ निकाय कहलाता है। इसमें सबसे लम्बे सुत्त संकलित किये गये हैं। इन सुत्तों की संख्या ३४ है और ये तीन वग्गों में विभक्त हैं, सीलखंधवग्ग, महावग्ग, पाटिकवग्ग। दूसरा निकाय है, मज्झिम निकाय जिसमें मझले आकार के सुत्त संकलित हैं। इसमें सम्प्रदाय के सुन्दरतम अंश सन्निहित हैं। मज्झिम निकाय के सुत्तों की संख्या १५२ है और यह ५०-५० के तीन भागों में विभक्त है, मूलपण्णास, मज्झिम पण्णास और उपरि पण्णास। तीसरा और चौथा निकाय निश्चित रूप से ही बाद के पूरक संकलन हैं। इनका विस्तार भी दीघ और मज्झिम निकाय की अपेक्षा ज्यादा है। संयुत्त निकाय में मिली-जुली सामग्री है। इसमें सुत्तों की संख्या २८८९ है और यह निकाय पाँच भागों में विभक्त है। अंगुत्तर निकाय (एकोत्तर

निकाय) ११ निपातों में विभक्त है, एकनिपात, दुकनिपात प्रभृति से लेकर एकादश निपात तक प्रत्येक निपात में उसकी संख्या के प्रतीकात्मक रूप से सम्बद्ध विषय संकलित हैं। उदाहरण के लिए 'एक-निपात' में नारी, जो मनुष्य के मन के लिए सबसे बड़ी बाधा है, विषय के रूप में गृहीत है। इसमें सुत्तों की संख्या २३०८ है। सुत्त पिटक का पाँचवाँ निकाय खुद्दक निकाय है, इसमें छोटे सुत्तोंका संकलन है साथ ही इसमें विषय की भी बहुत विविधता है। सिंहल, बर्मा और स्याम के बौद्ध निकायों में इस निकाय के अन्तर्गत संगृहीत ग्रन्थ के सम्बन्ध में मतैक्य भी नहीं है। सिंहल के सम्प्रदाय के अनुसार खुद्दक निकाय के अन्तर्गत (पहला) खुद्दक पाठ, (दूसरा) धम्मपद (४२३ पद्यों का संकलन), (तीसरा) उदान बुद्ध के गम्भीर वचनों का संकलन, इन्हींके साथ गद्य में वे प्रसंग भी दिये गये हैं जब बुद्ध ने इन वचनों को कहा है, (चौथा) एक इतिवुत्तक (शास्ताके नैतिक उपदेशोंका संकलन), (पाँचवाँ) सुत्तनिपात (यह खुद्दक निकाय का प्राचीनतम अंश है और इसमें ५४ सुत्त हैं), (छठाँ) विमानवत्थु (दिव्य विमानों का वर्णन, ८३ कथाओं का संकलन), (सातवाँ) पेतवत्थु-प्रेत लोक का वर्णन जिसमें ५१ कथायें संकलित हैं (ये दोनों निश्चित रूप से ही पालि त्रिपिटक के बहुत बाद के संकलन हैं); (आठवाँ) थेरगाथा और (नवाँ) थेरीगाथा—ये छन्दोबद्ध रचनायें हैं, जिसमें थेर और थेरियोंके उद्गार संकलित हैं; इनमें पालि तिपिटक के निश्चित रूप से सबसे अधिक काव्यतम अंश संकलित हैं। थेरगाथाओं की संख्या १२७९ और थेरीगाथाओं की ५२२ है; (दसवाँ) जातक (या मूलतः पद्यों के संग्रह जिनके साथ गद्य भाग का कथानक था। इसमें बुद्ध के पिछले जन्म की कहानियाँ दी गई हैं। तिपिटक में सम्प्रदायगत केवल पद्य भाग ही माने जाते हैं। गद्य भाग कथा सुनानेवाले द्वारा यादृच्छिक रूप में परि-

वर्तित किया जा सकता है), (ग्यारहवाँ) निद्देस-यह सुत्त निकाय के एक अंश पर टीका है, जो अनुश्रुति के अनुसार सारिपुत्त द्वारा रची कही जाती है, (१२ वाँ) पटिसंभिदा मग्ग (अर्हन्त के ज्ञानका वर्णन) यह अभिधम्म पिटक के अन्तर्गत ही आने के योग्य है; (१३ वाँ) उपदान—यह बौद्ध सन्तों के उत्तम कार्यों का विवरण है और बाद की रचना है, संस्कृत बौद्ध साहित्य में इनके समकक्ष अवदान मिलते हैं, (१४ वाँ) बुद्ध वंश छन्दोबद्ध हैं, २८ सर्गों में २४ पूर्व बुद्धों और गौतम बुद्ध की कहानी दी गई है और यह कहानी गौतम बुद्ध के द्वारा ही कही गई है। (१४ वाँ) चरिया पिटक में ३५ छन्दोबद्ध जातक दिये गये हैं।

२.५—विनय पिटक के अन्तर्गत तीन खण्ड हैं (१) प्रथम खण्ड सुत्तविभंग है, जो पुनः दो भागों में विभक्त है, पाराजिक एवं पाचित्तिय। सुत्तविभंग पातिमोक्ख पर ही आधृत है। पातिमोक्ख ही विनय का प्राचीनतम अंश है। यह संघ में उपोसथ दिनों में पापस्वीकृति के लिए विहित था। सुत्तविभंग वस्तुतः इसी पर एक टीका है। पाराजिक पकरण में वे पाप आते हैं, जिनका दण्ड भिक्षु-संघ से निकाल दिया जाना था अर्थात् बहुत गम्भीर अपराधों का इसमें वर्णन है। पाचित्तिय पकरण में वे आते हैं, जिनका प्रायश्चित किया जा सकता है। (२) विनय पिटक में दूसरा खण्ड हैं, खंधक जो अपने दो वग्गों में विभक्त है—महावग्ग और चुल्लवग्ग। खंधक में संघ के विधि-नियमों का संकलन है। महावग्ग के प्रारम्भिक अंश में सम्बोधि से लेकर वाराणसी में प्रथम संघ की स्थापना तक का संक्षिप्त इतिहास भी दिया गया है। चुल्लवग्ग महावग्ग का ही एक सिलसिला है। (३) विनय-पिटक का तीसरा खण्ड है, परिवार जिसमें १९ उपखण्ड हैं। यह सम्भवतः सिंहल में ही विकसित हुआ और इसीलिए बहुत बाद की रचना है। यह विनय के नियमों का

एक प्रकार से परिशिष्ट ही है।

२.६—तीसरा पिटक है, अभिधम्म जो धम्म का पूरक है। अभिधम्म को व्यवस्थित दर्शन तो नहीं कहा जा सकता, पर व्यवस्थित दर्शन के लिए इसमें सामग्री जरूर है, क्योंकि यह तर्क, प्रामाण्यवाद एवं धर्मपरीक्षा से ही सम्बन्धित है। अभिधम्म का सम्मान बर्मा में सबसे अधिक है। इसके अन्तर्गत ७ ग्रन्थ आते हैं—

(१) धम्मसंगणि—जिसमें मानसिक वृत्तियों अथवा धर्मों का परिगणन है।

(२) विभंग अर्थात् विवेचन जो धम्मसंगणि का ही विस्तार है।

(३) कथावत्थु, इसमें २५२ भ्रान्त मतों का खण्डन है।

(४) पुग्गल पञ्ञत्ति—इसमें प्रश्नोत्तर शैली में पुद्गल का वर्णन है।

(५) धातु-कथा या धातुपकरण—यह बाह्य तत्त्वों का विवेचन है।

(६) यमक—यह द्वन्द्वात्मक तर्क का परिगणनात्मक ग्रन्थ है।

(७) पट्ठानप्पकरण—बहुत ही बाद का ग्रन्थ है, जो हेतुवाद से सम्बद्ध है और यह सबसे अधिक कठिन है।

२.६—परित्त अथवा महापरित्त नाम से सम्प्रदाय साहित्य का एक संकलन है जो कवच आदि के रूप में लोक-प्रचलित था। इसमें २८ सुत्त हैं।

२.७—सम्प्रदायेतर साहित्य का विवरण यों है। यह मुख्यतः अट्ठकथाओं के काल में रचित हुआ है। सबसे बड़े टीकाकार बुद्धघोष हुए हैं, जिन्होंने प्राचीन सिंहली भाषा से वर्तमान अट्ठ-कथा का पालि में अनुवाद किया। बुद्धघोष का जन्म उत्तर भारत में ब्राह्मण कुल में हुआ था और वे सिंहल नरेश महानाम

के समय में सिंहल पहुँचे थे। उनकी टीकायें हैं (१) समन्त-पसादिका (विनय पिटक पर), (२) कंखावितरणी (पातिमोक्ख पर), (३) सुमंगलविलासिनी (दीघ निकाय पर), (४) पंपचसूदनी (मज्झिम निकाय पर), (५) सारत्थपकासनी (विनय पिटक पर), (६) मनोरथपूरणा (अंगुत्तर निकाय पर), (७) परमत्थजोतिका (खुद्दक निकाय पर), (८) अट्ठसालिनी (धम्मसंगणि पर), (९) सम्मोहविनोदनी (विभंग पर), (१०) पंचपकरणट्ठकथा (अभिधम्म पिटक के शेष अंश पर)। इन ग्रन्थों के अलावा बुद्धघोष ने विसुद्धिमग्ग नाम का बुद्धधर्म का एक विश्वकोश भी लिखा। जातकट्ठवण्णना नाम की जातक पर टीका निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती कि बुद्धघोष द्वारा रचित है या नहीं। इस टीका में प्रत्येक जातक कथा के चार अंश हैं—(१) सम्प्रदायगत गाथा, (२) अतीत वत्थूनि (प्राचीन जन्म की कहानी), (३) पच्चुप्पन्न वत्थूनि (वर्तमान जन्म की कहानी) इसी में अन्त में समाधान भी दिया जाता है, जिसमें प्राचीन और नवीन जन्म के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाता था। (४) वेय्याकरण, जिसमें पद्य का प्रत्यक्षर अर्थ दिया जाता था। बुद्धघोष के पूर्ववर्ती तीन ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण हैं (१) मिलिन्दपञ्हो—जो भिक्षु नागसेन और मिलिन्द (मिनैण्डर) के बौद्ध-दर्शन सम्बन्धी संवाद का विवरण है। कदाचित् यह किसी संस्कृत ग्रन्थ पर आधृत है, जो ईसा के आस-पास रचा गया था। (२) दूसरा ग्रन्थ दीपवंस जो महासेन के राज्य काल तक (३२५–३५५ ई० तक) का सिंहल का इतिहास है। बुद्धघोष इससे परिचित हैं। (३) तीसरा ग्रन्थ है, महाअट्ठकथा—उसके बारे में पहले कहा जा चुका है। बुद्ध-घोष के समय में ही उनके आश्रयदाता महानाम ने महावंश की रचना की। इसमें काव्य के रूप में दीपवंस की कहानी उसी क्रम से पुनः कही गई है। इसके बाद १२ वीं शताब्दी के अन्त

में तेरमहाकस्सप ने सिंहल में एक संगीति बुलाई थी और उन्होंने अट्ठकथाओं पर टीका लिखवाने का कार्य करवाया था। इन टीकाओं में सारिपुत्त की सारत्थदीपनी मिलती है। इसके बाद टीका का कार्य अनवरत रूप से १९ वीं शताब्दी तक चलता रहा। पालि व्याकरणों के समय में ऊपर कहा जा चुका है। व्याकरण के अलावा पालि छन्दःशास्त्र के भी ग्रन्थ मिलते हैं।

२.८—इस प्रकार थेरवाद सम्प्रदाय की भाषा के रूप में पालि परम्परा आज भी उसी रूप में जीवित है, जिस रूप में संस्कृत भारत वर्ष में और उत्तरकालीन पालि भाषा में भी वे ही कृत्रिमतायें हैं जो बाद की संस्कृत में पाई जाती हैं। एक तरह से पालि भी संस्कृत की तरह रूढ़िबद्ध संस्कृत भाषा के रूप में थेरवादियों के द्वारा जिलाई रखी गई है।

३

पालि की वर्णसंघटना

३.०—पालि की वर्ण-संघटना का विचार हम तीन खंडों में करना चाहते हैं :

(१) पालि और संस्कृत की वर्णराशि की तुलना (२) पालि की स्वरसंघटना, (३) पालि की व्यंजन-संघटना ।

३.१—पालि की वर्णराशि में निम्नलिखित स्वर आते हैं, अ इ उ ए ओ (प्रत्येक ह्रस्व और दीर्घ) । संस्कृत की वर्णराशि से तुलना करने पर इसमें ऋ ऌ एवं ऐ औ का भाव दृष्टिगोचर होता है। ऐ और औ प्रायः ए और ओ में रूपान्तरित हो गये हैं तथा ऋ, इ उ या अ में, ऌ के लिए तो संस्कृत साहित्य भर में क्लृप्त' को छोड़कर दूसरा कोई उदाहरण नहीं है । और इसके लिए पालि में किलित्त मिलता है । पालि की व्यंजनराशि में संस्कृतके समस्त व्यंजन हैं केवल ष और श भर नहीं हैं । इस अनुस्वार अन्त्य व्यंजन के रूप में एक स्वतन्त्र इकाई मानी जाती है । इस अनुस्वार को निग्गहित कहा गया है । पालि में म् संस्कृत की तरह केवल अपने स्वर्गीय स्पर्श के साथ ही नहीं आता, बल्कि स्वतन्त्र रूप से भी पद के आदि में और मध्य में स्वरों के बीच में आता है । वैदिक संस्कृत के भाँति ही इन्हीं स्वरों के बीच आनेवाला ड और ढ क्रमशः ळ और ळ्ह् के रूप में उच्चरित होते हैं । ह् का उच्चारण य र ल व या अनुनासिक वर्ण के साथ 'ओरस' होता है ।

३.२—पालि की स्वर संघटना में मुख्य परिवर्तन की दिशायें

निम्नलिखित हैं:—

(१) संस्कृत में अक्षर संघटना में कोई मात्रानियम नहीं है, इसके विपरीत पालि में एक निश्चित मात्रा-नियम है, जिसके अनुसार विवृत अक्षर के पूर्व ही दीर्घ स्वर आ सकता है। अनुस्वार या व्यंजन के पूर्व का स्वर भी संवृत की तरह ह्रस्व होता है। इस मात्रा-नियम के परिणामवश संस्कृत के संयुक्ताक्षर के पूर्व आनेवाले दीर्घ स्वर ह्रस्व में परिवर्तित हो गये हैं : जैसे—

जीर्ण> जिण्ण, मांस> मंस, नदीम्> नदिं या संयुक्त व्यंजन के स्थान पर एक व्यंजन हो जायगा और उसके परवर्ती ह्रस्व स्वर में क्षतिपूर्ति के रूप में दीर्घता प्राप्त हो जाय, यदि वह पहले से दीर्घ न रहा हो। उदाहरण के लिए सिंह> सीह, दीर्घ>दीघ। कहीं-कहीं सिर्फ संयुक्ताक्षर के पूर्व दीर्घ स्वर मिल जाते हैं या सा + अज्ज = साज्ज। साथ ही मात्रा-नियम के ही कारण कहीं-कहीं स्वर भक्ति की अवस्था में भी संयुक्त व्यंजन के पूर्व आनेवाला दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है : जैसे सूर्य> सुरिय।

(२) स्वर—संघटना में दूसरा परिवतेन य र ल व, अनुनासिक के साथ संयुक्त व्यंजनों में बीच के स्वर-भक्ति करने से ही होता है। इस स्वरभक्ति की प्रक्रिया ऋक्प्रातिशाख्य में मिलती है और स्वरभक्ति के स्वर की मात्रा ह्रस्व स्वर की अपेक्षा आधी या चौथाई मानी गई है। ऋग्वेद में भी इसीलिए 'वीर्य' को 'वीरिय' कहीं-कहीं पढ़ा जाता है। स्वरभक्ति के स्वर के रूप में अधिकतर इ आता है, पर कहीं-कहीं अ भी मिलता है। उदाहरण के लिए ईर्यते>इरियति, मर्यादा> मरियादा, वज्र> वजिर, श्री> सिरी, प्लक्ष> पिलक्ख, ह्लाद> हिलाद, स्नेह> सिनेह, राज्ञः> राजिनो, गर्हति>गरहति, प्लवते>पलवति, द्वे> दुबे, मूर्वा> मरुवा

(३) गुणात्मक अपश्रुति के कारण परिवर्त्तन होता है, जबकि इ उ, ए ओ में परिवर्तित हो जाते हैं। ये परिवर्तन प्रायः संयुक्ता-

क्षरों के पूर्व होते हैं, जैसे विष्णु> वेण्हु और कूर्च> कोच्छ, ईदृश> एद्दश। कभी-कभी इसका उलटा भी होता है, जब ए ओ के लिए इ उ मिलते हैं, जैसे श्रोष्यामि> सुस्सं, गोनाम्> गुन्नं, सैन्धव> सिंधव। गुणात्मक अपश्रुति के अलावा मात्रात्मक अपश्रुति के कारण भी परिवर्तन मिलते हैं। इ के स्थान में ई, उ के स्थान पर कहीं-कहीं ऊ मिल जाते हैं, विशेष रूप से तृतीया एवं सप्तमी बहुवचन के रूपों में।

(४) कभी-कभी समीकरण और विषमीकरण के कारण स्वर में परिवर्तन हो जाता है जैसे उ के पूर्व आनेवाला इ, उ हो जाता है। (क)—इषु> उसु, इक्षु> उच्छु (ख) शिशु> सुसु। उ के पूर्व आनेवाला अ भी उ में परिवर्तित हो जाता है। (ग) समुद्ग> सुमुग्ग, असूया> उसूया। के पूर्व आनेवाला अ इ में परिवर्त्तित हो जाता है, जैसे, सरीसृप> सिरिंसप>, तमिस्रा> तिमिस्सा (घ) अ के पूर्व आने वाला उ> अ में परिवर्तित होता है; कूर्पर> कप्पर (ङ०) उ के बाद आनेवाला अ, उ में परिवर्तित हो जाता है जैसे कुरंग> कुरुंग। (च) अ के बाद आनेवाला इ, अ में परिवर्तित हो जाता है, जैसे—अरिंजर> अरंजर (छ) अ के बाद आनेवाला उ, अ में परिवर्तित हो जाता है, जैसे आयुष्मन्त> आयस्मन्त। (ज) इसी प्रकार व्यंजन का भी प्रभाव स्वरों को समीकृत करने पर पड़ता है, कभी-कभी ओष्ठ्य स्पर्श के सन्निकर्ष में स्वर को ओष्ठ्य रूप प्राप्त होता है और तालव्य के साथ स्वर को तालव्य इ रूप प्राप्त होता है।

(५) स्वराघात या बलाघात का प्रभाव प्रायः ऐसे शब्दों में पड़ता है, जो तीन या तीन से अधिक अक्षरों के बने हैं और जिनके बारे में संस्कृत में प्रथम अक्षर पर स्वराघात का साक्ष्य मिलता है। ऐसी स्थिति में प्रायः दूसरे अक्षर का स्वर ह्रसित रूप धारण करता है और प्रायः उस ह्रसित स्वर के रूप में इ ही

मिलता है। जैसे चन्द्रमा> चन्दिमा, चरम> चरिम, पुत्रमान्> पुत्तिमा, मध्यम>मज्झिम।

(६) कहीं-कहीं ओष्ठ्य स्पर्श के साथ कारण स्वराघातहीन अ को स्वराघात के बाद उ प्राप्त होता है। जैसे नवति>नउति, सम्मति>सम्मुति। कभी-कभी स्वराघातहीन ह्रस्व स्वर लुप्त भी हो जाता है। जैसे जागरति>जग्गति, उद्क>*उद्क>*उत्क> *उक्क>*ओक्क>ओक इसी तरह स्वराघातयुक्त अक्षर के पूर्व आनेवाला अक्षर भी ह्रसित हो जाता है, जैसे न्यग्रोध> निग्रोध, स्थापयति>ठपेति।

(७) स्वरों में परिवर्तन सम्प्रसारण और संकोचन के कारण भी होता है। सम्प्रसारण के कारण या>ई, वा>ऊ मिलता है। जैसे व्यतिवृत्त>वीतिवत्त, श्वान>सून, संकोचन के कारण अय>ए, अव>ओ मिलते हैं। जैसे जयति>जेति, अवधि> ओधि। कहीं-कहीं ऐ और आय् से आ भी मिलता है। जैसे स्वस्त्ययन>सोत्थान, वैहायस>बेहास।

३.३—पालि की व्यंजन-संघटना का विचार करते समय हम इसको दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, एकल व्यंजन और संयुक्त व्यंजन। एकल व्यंजनों की स्थिति में संस्कृत से पालि में सबसे प्रमुख परिवर्तन हैं—

(क) संस्कृत के श ष स के स्थान पर पालि में केवल स मिलता है।

(ख) ड और ढ इनके स्वरों के बीच में आने पर क्रमशः ळ, ळह् वर्ण व्यष्टि के रूप में आते हैं।

(ग) संस्कृत का विसर्ग पालि में लुप्त हो गया है और संस्कृत में अन्त्य स्थिति में आनेवाले समस्त व्यंजन या तो पालि में लुप्त हो गये हैं या अनुनासिकों और विसर्ग के स्थान पर अनुस्वार हो गया है। इस मुख्य परिवर्तन के अलावा अनियमित

रूप से कुछ परिवर्तन विभाषाओं के प्रभाव से पालि में दृष्टिगोचर होते हैं, जो सार्वत्रिक नहीं हैं। उदाहरण के लिए दो स्वरों के बीच में आनेवाले स्पर्श का लोप—जैसे निज के लिए निय, (छ) दो स्वरों के बीच में आनेवाले महाप्राण स्पर्श के लिए ह जैसे लघु>लहु, रुधिर>रुहिर (ज) दो स्वरों के बीच में आनेवाले अघोष स्पर्श का घोषीकरण—जैसे स्रुच्>सुजा, उताहो> उदाहु, प्रतियातयति>पटियादेति, प्रव्यथते>पवेधति, (झ) कदाचित् पैशाची के प्रभाव से घोष का अघोष में परिवर्तन—जैसे अगुरु>अकलु, स्थगन>थकन, वागुरा>वाकुरा, प्राजयति> पाचेति, कुसीद>कुसीत। (ञ) अव्युत्पन्न महाप्राणीकरण, कील> खील, कुब्ज>खुज्ज (ट) स्पर्शों का विस्थानीकरण—जैसे चिकित्सति के लिए तिकिच्छति, कुन्द के लिए चुन्द। (ठ) इसके अन्तर्गत एक नियमित परिवर्तन है, समीकरण के प्रभाव से ऋ और र के बाद आनेवाली दन्त्य स्पर्श ध्वनि का मूर्धन्य ध्वनि में परिवर्तन—जैसे प्रति>पटि, आम्रातक>अम्बाटक, प्रथम> पठम। कहीं-कहीं यह मूर्धन्यीकरण र और ऋ के बिना हो गया है—जैसे दंश>डस, दहति>डहति, (ज) इसी प्रकार द के लिए र, न के लिए ल या ण और ड के लिए ळ भी मिलते हैं— जैसे एकादश>एकारस, ईदृश > एरिस, पिनद्ध > पिलंध, वेणु>वेळु (झ) र के लिए ल मागधी के प्रभाव से पालि में प्राप्त होता है, जैसे रुद्र>लुद्द। इसका प्रतिलोम पैशाची के प्रभाव से ल के लिए र भी कहीं-कहीं मिलता है, पर पूर्व की अपेक्षा कम—जैसे किल के लिए किर (ट) य-व य-र, य-ल और व-म के विनिमय भी अत्यन्त विरल प्रयोगों में प्राप्त होते हैं, जैसे आयुध>आवुध, मृगया>मिगवा, दाव>दाय, चत्वर> चच्चर, यष्टि>लट्ठि, स्नायु>नहारु, द्रविड>दमिल> मीमांसते>वीमंसति।

३.४—पालि में सबसे अधिक परिवर्तन संयुक्त व्यंजन की संघटना में हुआ है। अन्त्य स्थिति में तो संस्कृत में ही संयुक्त व्यंजन दो-तीन उदाहरणों को छोड़कर नहीं आता था। पालि में तो अत्यन्त एकल व्यंजन के रूप में केवल अनुस्वार है। उस दशा में अन्त्य स्थिति में संयुक्त व्यंजन के मिलने की बात ही नहीं उठती। आद्य स्थिति में संयुक्त व्यंजन भी पश्चिमी बोली के प्रभाव से कदाचित् केवल असार्वत्रिक रूप में य र व के साथ संयुक्ताक्षर मिल जाते हैं। इनकी भी संख्या गाथाओं की भाषा में अधिक है। शेष समस्त संयुक्त व्यंजन आद्य स्थिति में समीकरण के अनन्तर एकल व्यंजन के रूप में रूपान्तरित हो जाते हैं। जैसे प्रीति>पीति, ब्राह्मण> बाह्मण। ध्यान>झान।

३.५—संयुक्ताक्षर की संघटना में सबसे अधिक परिवर्तन मध्य स्थिति में होता है और वहाँ भी परिवर्तन-प्रक्रिया तीन प्रकारों में विभक्त की जा सकती है—(क) य र ल व और अनुनासिक के साथ संयुक्ताक्षर प्रायः स्वरभक्ति के द्वारा विभक्त हो जाते हैं, जैसे सूर्य>सुरिय, ग्लान>गिलान, अर्हति> अरहति, स्नान>नहान, स्मरति>सुमरति। (ख) वर्णव्यत्यय प्रायः ह् या ऊष्म वर्ण के साथ क्रमशः य व और अनुनासिक वर्ण के साथ संयोग होने पर होते हैं। इस प्रक्रिया में ऊष्ण वर्ण ह् में परिवर्तित हो जाता है। जैसे

पूर्वाह्ण>पुब्बण्ह, चिह्न>चिन्ह, प्रश्न>पञ्ह, आरुह्य> आरुय्ह, जिह्वा>जिव्हा, उष्ण>उण्ह।

स्म प्रारम्भिक स्थिति में प्रायः म में ही समीकृत हो जाता है, जैसे स्मश्रु>मस्सु (ग) समीकरण और विषमीकरण के कारण परिवर्तन-समीकरण पूर्वगामी और पश्चगामी दोनों प्रकार के होते हैं और ये मुख्यतः तो इस आधार पर होते हैं कि पालि में संयुक्ताक्षरों के केवल चार प्रकार ही रह सकते हैं। (१) महाप्राण

स्पर्शों और ह् को छोड़कर शेष द्वित्व, (२) अल्पप्राण स्पर्श + उसी का समकक्ष महाप्राण, (३) अनुनासिक वर्ण + सवर्गीय स्पर्श, (४) अनुनासिक, य, व + ह्। इनके अलावा कुछ विरल रूप में य व र के पूर्व भी कुछ स्पर्श मिलते हैं, पर प्रायः उपर्युक्त चार चौखटों में संयुक्ताक्षर की संघटना पालि में सम्भव है। समीकरण का दूसरा आधार है बल का अनुक्रम। क्रमशः स्पर्श, ऊष्म–अनुनासिक–ल–व–य–र इस प्रकार क्रमशः वर्णों की निर्बलता बढ़ती चली आती है और निर्बल वर्ण प्रायः सबल वर्ण में ही समीकृत होता है। केवल इतना ध्यान रखना पड़ता है कि जहाँ पर संयुक्ताक्षर में एक महाप्राण वर्ण है, वहाँ समीकरण के पश्चात् महाप्राण वर्ण अन्त में ही आयेगा। जैसे (१) ख्य>क्ख, क्थ>त्थ, (२) आद्य स्थिति में समीकृत संयुक्त व्यंजन में से प्रायः दूसरा व्यंजन ही रह पाता है। जैसे ष्ट>ट्ठ>ठ। (३) जहाँ समीकरण के फलस्वरूप व्व आता है, उसके स्थान पर ब्ब और आद्य स्थिति में केवल व रह जाता है। (४) समीकरण के पूर्व वर्णों का स्थान-परिवर्तन भी हो जाता है। जैसे य के पूर्व दन्त्य ध्वनि का तालव्यीकरण हो जाता है या जैसे ष के पहले क कभी-कभी तालव्यीकृत हो जाता है। (५) म के बाद र या ल आने पर जब समीकरण होता है तो ब–श्रुति बीच में सन्निविष्ट हो जाती है। जैसे ताम्र>तम्ब, आम्र>अम्ब, गुल्म>गुम्ब।

३.६—अग्रगामी समीकरण इन संयोगों में होता है—(१) स्पर्श + स्पर्श। जैसे षट्क>छक्क, मुद्र>मुग्ग, (२) ऊष्मध्वनि + स्पर्श इस अवस्था में स्पर्श का महाप्राणीकरण अन्त में हो जायगा। जैसे आश्चर्य>अच्छेर, निष्क>निक्ख, (३) र या ल + स्पर्श, ऊष्म या अनुनासिक, कर्क>कक्क,(४) अनुनासिक + अनुनासिक, निम्न>निन्न, (५) र + ल या य या व जैसे दुर्लभ> दुल्लभ, निर्याति>निय्याति, आर्य>अय्य।

३.७—पश्चगामी समीकरण इन संयोगों में आता है—स्पर्श + अनुनासिक, जैसे उद्विग्न>उव्विग्ग, स्वप्न>स्वप्प पर ज्ञ से पुरोगामी समीकरण हो जाता है। जैसे प्रज्ञा>पञ्ञा (२) स्पर्श + र या ल, तर्क>तक्क, उद्र>उद्द, शुक्ल>सुक्क। कभी-कभी स्पर्श + र जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, जैसे न्यग्रोध> निग्गोध (३) स्पर्श + अन्तःस्थ, जैसे शक्य>सक्क, कुड्य>कुड्ड, प्रज्ज्वलित>प्रज्जलित, चत्वारः>चत्तारो। (४) ऊष्म + अन्तःस्थ, जैसे मिश्र>मिस्स, अवश्यम्>अवस्सं, अश्व>अस्स। आद्य स्थिति में केवल स ही मिलता है, जैसे, श्रोत>स्रोत, स्यन्दन> संदन, श्वेत>सेत। भविष्यत् के रूपों में हि में परिवर्तित होता है जैसे एष्यति>एहिति, (५) अनुनासिक, ल + अन्तःस्थ किण्व> किण्ण, रम्य>रम्म, कल्य>कल्ल।

३.८—उपर्युक्त समीकरण के पूर्व स्थान का तालव्यीकरण में समीकरण य के पूर्व आनेवाली दन्त्य ध्वनि में और र के बाद आनेवाली दन्त्य ध्वनि का मूर्धन्यीकरण पालि में प्रायः सार्वत्रिक है। इनमें प्रायः य और र का लोप हो जाता है, पर उसके परिणामस्वरूप तालव्य या मूर्धन्य रूप नित्यशः आता है। जैसे सत्य> सच्च, रथ्या> रच्छा, अन्य> अञ्ञ या जैसे कैवर्त> केवट्ट, छर्दयति> छड्डेति, वर्धते> वड्ढति। मूर्धन्यीकरण कहीं-कहीं ऊष्म के प्रभाव के कारण भी हो जाता है। जैसे स्था> ठा।

३.९—क्ष> क्ख और च्छ दोनों रूप मिलते हैं। च्छ रूप पश्चिमी भाषा के प्रभाव से है, क्ख पूर्वी भाषा के प्रभाव से है। दक्षिण> दक्खिन, कक्ष, कच्छ, इसी प्रकार संस्कृत के प्स और त्स दोनों पालि में च्छ में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे कुत्सित> कुच्छित, मात्सर्य> मच्छिरिय, अप्सरा> अच्छरा, यद्यपि इसका अपवाद भी है जैसे उत्साद> उस्साद, उत्सव> उस्सव।

३.१०—जहाँ दो से अधिक व्यंजन के संयुक्ताक्षर होते हैं, वहाँ वे समीकरण के समय सिद्धान्तों के पूर्व के दो वर्णों के ही संयुक्ताक्षर में समीकृत हो जाते हैं। केवल निम्नलिखित सिद्धान्तों को दृष्टि में रखना पड़ता है :—

(१) जहाँ न् किसी स्पर्श के पूर्व ऐसे संयोग में आता है, वहाँ पर यह बना रहता है। इनके बादवाला ही संयुक्ताक्षर एकल व्यंजन में समीकृत होता है। जैसे आनन्त्य> आनंच, रन्ध्र> रंद्ध (२) जब स्पर्श या ऊष्म वर्ण के दोनों ओर अनुनासिक या अन्तःस्थ हों, तब पहला अन्तःस्थ मध्यवर्ती व्यंजन में समीकृत होगा, जैसे मर्त्य> मत्तय> मच्च। (३) उसी प्रकार जहाँ कोई अन्तःस्थ या अनुनासिक अन्त में आयेगा, वहाँ भी प्रथम दो व्यंजनों का समीकरण हो करके ही अन्तिम अन्तःस्थ का अनुनासिक में समीकरण या स्वरभक्ति द्वारा पार्थक्य होगा।

४

सन्धि

४.०—पालि में सन्धि संस्कृत से कई मानों में भिन्न है। आद्य स्थिति में पालि में केवल एक स्वर या एक व्यंजन आ सकता है, कहीं-कहीं, विशेष रूप से, अव्यय रूपों के आद्य स्वर लुप्त मिलते हैं। जैसे इव, अपि, इति, इदानीं के लिए क्रमशः व, पि, ति और दानि। कहीं-कहीं इ या ए के पूर्व य्-श्रुति और उ और ओ के पूर्व व्-श्रुति भी मिलती हैं। जैसे उक्त>उत्त>वुत्त और एव>येव>येव्व। इव से विय रूप इस प्रक्रिया के बाद वर्णव्यत्यय से सम्भव है। अन्त्य स्थिति में केवल स्वर या अनुस्वार आ सकता है। अन्त्य म् कहीं-कहीं विशेष रूप से अव्यय रूपों में लुप्त भी हो जाता है। अन्त्य अः और अर्, ओ में परिवर्तित होता है। मागधी के प्रभाव से बहुत विरल रूप से ए भी मिलता है, व्यंजन के पूर्व आनेवाला स्वर अपरिवर्तित रहता है। कभी-कभी दीर्घ रूप धारण कर लेता है।

४.१—संश्लेषजन्य संधि में समासों के भीतर अर्थात् अन्तः संधि में संस्कृत की प्रक्रिया का अनुसरण मात्रा नियम के अधीन रहते हुए पालि में प्रायः होता है। जैसे महोदधि, काकोलूक, पुनर्भव>पुनब्भव, सुव्रत>सुब्बत, पर कहीं-कहीं स्वर-संधि में स्वर लुप्त भी हो जाता है, जैसे सति + उपट्ठान = सतिपट्ठान। कहीं-कहीं इस संधि के कारण स्वर दीर्घ हो जाता है, जैसे पुप्फ + आसन = पुप्फासन।

४.२—इसके विपरीत बाह्य संधि पालि संस्कृत से अत्यन्त

पृथक् है। बाह्य संधि संस्कृत की अपेक्षा पालि में बहुत अधिक याद्दच्छिक है। यह संधि केवल निम्नलिखित ९ स्थितियों में हो सकती है—

(१) कर्त्ता और क्रिया,
(२) क्रिया और कर्म,
(३) विशेष्य और विशेषण,
(४) समानाधिकरण,
(५) क्रिया और अव्यय,
(६) नाम और संयोजक अव्यय।
(७) कर्म और क्रियाविशेषण,
(८) सम्बोधन और उसके परवर्ती शब्द,
(९) सर्वनाम और निपात अपने पूर्ववर्ती या परवर्ती शब्द के साथ। वस्तुतः गद्य की अपेक्षा पद्य में संधि अधिक पायी जाती है।

४.३—(१) जब दो स्वर मिलते हैं तो प्रायः दीर्घ स्वर हो जाता है। जैसे दुग्गता + अहं = दुग्गताहं, पर यदि उत्तर पद का ह्रस्व स्वर संयुक्ताक्षर के पूर्व आता है तो दीर्घ की जगह पर ह्रस्व स्वर फलित होता है। जैसे च + अस्सम् = चस्सं।

(२) जब गुण संधि होती है तो हमें संस्कृत की तरह ही ए या ओ फलित स्वर मिलते हैं, पर बाद के साहित्य में इ या उ ही अधिक मिलते हैं। जैसे च + इमे = चेमे, पर सत्त + इमानि= सत्तिमानि। कहीं-कहीं पूर्व पद अन्त्य अ के लोप होने पर फलित स्वर दीर्घ भी मिलता है, जैसे इध + उपपन्नो = इधूपपन्नो। पर इति के साथ प्रायः सन्धि होने पर इ का लोप होता है और पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो जाता है। इसका कारण कदाचित् यह है कि इति को त्ति रूप पहले प्राप्त होता है। इसके अनन्तर समीकरण के बाद पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो जाता है।

४.४—इसी तरह से ए + ए और ओ सन्धि में भी फलित स्वर ए ओ या इ उ दोनों मिलते हैं।

४.५—ए या ओ स्वर की सन्धि में दूसरा पूर्ववर्ती स्वर प्रायः लुप्त हो जाता है, जैसे सत्तो + अस्मि = सत्तोस्मि, चत्तारो + इमे = चत्तारोमे। कहीं-कहीं पूर्ववर्ती ए या ओ ही लुप्त हो जाते हैं जैसे यो + अहं = याहं, ये + अस्स = यस्स। प्रायः ते, मे, सो, यो, खो, इनके साथ जब किसी स्वर की सन्धि होती है तो इनका ए या ओ क्रमशः य् और व् में परिवर्तित हो जाता है जैसे ते + अत्थु = त्यत्थु, सो + यम् = स्वायं।

४.६—जहाँ संस्कृत में विसर्ग के लिए र् की प्राप्ति स्वर के पूर्व हो जाती है, वहाँ पालि में भी र् आ जाता है, जैसे पुनर् + एहिसि = पुनरेहिसि इसी तरह से दो स्वरों के बीच में कहीं-कहीं य् व् म् द् भी आ जाते हैं, जैसे च + इमे = चयीमे या कति + उत्तरि = कतिवुत्तरि, इसि + अवोच = इसिमओच, दी + अत्थु = दीरत्थु, मज्झे + इव = मज्झेरिव, पुनर् + एव = पुनरेव।

४.७—जहाँ तक स्वर और व्यंजन की सन्धियों का प्रश्न है, प्रायः या तो बाह्य सन्धि में पूर्व संयुक्ताक्षर सन्धि में पुनः परिवर्तित हो जाता है और या वह पूर्ववर्ती व्यंजन के साथ समीकृत भी हो जाता है, जैसे

सरति + वयो (व्ययः) = सरतिब्बयो

तयो + सु (तयः + सु०) = तयस्सु

ह् के पूर्व अनुस्वार कभी-कभी ञ् में परिवर्तित हो जाता है—

चित्तं + हि = चित्तञ्हि।

५

रूप-संघटना

५.०—रूप-संघटना के विचार को हम तीन भागों में विभक्त करेंगेः—(१) नाम रूप (सुबन्त), (२) धातु रूप (तिङन्त) (३) शब्द्-रचना (कृदन्त और तद्धित)।

रूप-संघटना का सामान्यतः परिवर्तन चार दिशाओं में हुआ है—

(१) वर्ण-संघटना के परिवर्तन के कारण परिवर्तन,

(२) रूपों की विविधता के सरलीकरण के कारण परिवर्तन तथा अति सदृशीकरण को दूर करने के लिए विसदृशीकरण के कारण परिवर्तन,

(३) लुप्त विभाषाओं के रूपों का अवशेष,

(४) सादृश्य के आधार पर नये रूपों की रचना। पालि में इन परिवर्तनों के कारण नयी परिस्थिति आयी है, जिसमें (१) द्विवचन का क्रिया रूप और नाम रूप दोनों से लोप हो गया है, (२) वाक्य में लिंग का समनुहार शिथिल हो गया है, (३) चतुर्थी और षष्ठी का एकीकरण हो गया, है (४) आत्मनेपदी रूप क्रमशः परस्मैपदी में विलीन होते जा रहे हैं, (५) अनिट् और सेट् रूपों का एकीकरण प्रारम्भ हो गया है, (६) लुङ् और लङ् के रूप लुङ् में विलीन हो गये हैं, (७) लिट् और लुट् के रूप एकदम लुप्त हो गये हैं। आशीर्लिङ् विधि लिङ् में विलीन हो गये हैं। ल्यप् के रूप त्वा के रूपों में लुप्त होते जा रहे हैं, (८) सर्वनाम और नाम प्रातिपदिक के रूपों का एकीकरण शुरू हो गया है।

(९) हलन्त प्रातिपादिकों के रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों तक ही अधिकतर सीमित हैं। शेष विभक्तियों में क्रमशः वे अजन्त प्रातिपादिक के रूपों में विलीन होने लगे हैं। वैदिक और कहीं-कहीं पूर्ववैदिक रूपों के भी पुनरुज्जीवन या और अधिक ठीक कहें तो उन रूपों का आग्रह रखने की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है, जैसे तृतीया बहुवचन में अकारान्त प्रातिपादिक के आगे ऐः>एहि प्रत्यय मिलता है या जैसा अस्मे, युष्मे के समकक्ष रूप पालि में मिलते हैं।

५.१ (१)—पहले हम अकारान्त प्रातिपदिक प्रक्रिया को लें। राम शब्द का रूप यों पालि में चलाया जायगा—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	रामो	रामा
द्वितीया	रामं	रामे (विसदृशीकरण के द्वारा)
तृतीया	रामेण, रामा	रामेहि, रामेहिं
पंचमी	रामा, रामस्मा (=म्हा)	रामेहि, रामेहिं
चतुर्थी, षष्ठी	रामस्स, रामाय (विरल रूप)	रामाणं
सप्तमी	रामे, रामस्मि(हि)	रामेसु
सम्बोधन	राम	रामा

इन्हें देखने से स्पष्ट होगा कि तृतीया एकवचन एवं बहुवचन में आ और एभिः वैदिक प्रत्यय के अवशेष मिलते हैं, पंचमी तथा सप्तमी में एकवचन में सर्वनाम प्रातिपदिक के साथ सादृश्य की प्रक्रिया के कारण स्मात् और स्मिन् प्रत्यय नाम प्रातिपादिक में भी लिये गये हैं, पंचमी बहुवचन में तृतीया का ही रूप सरलीकरण के आधार पर रखा गया है। द्वितीया बहुवचन में ए प्रत्यय केवल प्रथमा बहुवचन के रूप से विविक्त करने के लिए रखा गया है। डा० सुकुमार सेन के अनुसार यह प्रागृभारत-ईरानी रूप

की अनुस्मृति है। इस अकारान्त प्रातिपदिक में अपवाद के रूप में कुछ रूप मिलते हैं, जैसे प्रथमा बहुवचन में रामासो। यह वैदिक रूप की स्मृति है। इसी का मागधी प्रभाव से आसे ऐसे रूप मिलते हैं। मागधी प्रभाव से प्रथमा एकवचन में ओ की जगह पर ए तथा नपुंसकलिंग में भी अ की जगह पर ए प्रत्यय मिलता है। तृतीया एकवचन में भी विरल रूप से एन की जगह पर असा प्रत्यय जैसे पदसा, वलसा, वेगसा, मुखसा रूप मिलते हैं। यह अस्स में अन्त होनेवाले प्रातिपदिक के सादृश्य के आधार पर हुआ है। नपुंसकलिंग प्रातिपदिक के रूप में तृतीया से सप्तमी तक पुंल्लिंग प्रातिपदिक की भाँति ही है किन्तु प्रथमा और द्वितीया और सम्बोधन के रूप इस प्रकार हैं :—

	एकवचन	द्विवचन
प्रथमा	रूपं	रूपानि, रूपा, (वैदिक रूप)
द्वितीया	रूपं	रूपानि, रूपे (पुंल्लिंग प्रातिपदिक के सादृश्य पर)
सम्बोधन	रूप	रूपानि, रूपा

(२) अकारान्त प्रातिपदिक के रूप की प्रक्रिया इस प्रकार सूचित है :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	लता	लता, लतायो (य श्रुति जोड़कर)
द्वितीया	लतं	लता, लतायो
तृतीया	लतायं	लताहि
चतुर्थी	लताय	लतानं
षष्ठी	,,	,,
सप्तमी	लताय, लतायं	लतासु
सम्बोधन	लते	लता, लतायो

तृतीया, पंचमी एवं षष्ठी तीनों एकवचन के प्रत्यय आया

से उद्भूत हैं। अया प्रत्यय तृतीया एकवचन में लुप्त हो गया है। प्रथमा, द्वितीया एवं सम्बोधन बहुवचन का रूप वस्तुतः ईकारान्त प्रातिपदिक से लिया गया है। अब इकारान्त और उकारान्त पुंल्लिंग प्रातिपदिकों के रूप इस प्रकार चलते हैं—कवि और गुरु।

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा तथा सम्बोधन	कवि, गुरु	कवयो, गुरवो कवी, गुरू
द्वितीया	कविं, गुरुं	,, ,,
तृतीया	कविना, गुरुणा	कवीहि, गुरूहि
पंचमी	कविस्मा (म्हा) गुरुस्मा (म्हा)	,, ,,
षष्ठी, चतुर्थी	कविस्स, गुरुस्स कविनो, गुरुणो	कवीनं, गुरूणं
सप्तमी	कविस्मि (म्हि) गुरुस्मि (म्हि)	कवीसु, गुरूसु

इसमें भी पंचमी एवं सप्तमी एकवचन में सर्वनाम प्रातिपदिक से रख लिया गया है तथा षष्ठी, चतुर्थी में नपुंसकलिंग प्रातिपदिक से रूप लिया गया है। तृतीया एवं सप्तमी बहुवचन में षष्ठी बहुवचन के प्रातिपदिक स्वर की दीर्घता सादृश्य के आधार पर ली गयी है। सम्बोधन बहुवचन में गुरुवे मागधी प्रभाव से मिलता है। इकारान्त प्रातिपदिक में सखि शब्द सबसे अधिक जटिल है, क्योंकि इसमें इस प्रातिपदिक के तीन विविध रूप मिलते हैं, सखि, सख और सखार। सखार रूप सादृश्य से सत्था-सत्थारं (सखा-सखारम्) सादृश्य के आधार पर आया है। इसका रूप यों चलता है—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा, सखो	सखा, सखारो, सखानो, सखायो
द्वितीया	सखारं	सखी, सखायो, सखिनो, सखारे
तृतीया	सखिना	सखेहि, सखारेहि

पंचमी	सखारम्हा	सखेहि, सखारेहि
षष्ठी, चतुर्थी	सखिना, सखिस्स	सखेन, सखानं, सखारानं
सप्तमी	सखे	सखेसु, सखारेसु

इस प्रकार इसमें कई रूप एक साथ मिल गये हैं। नपुंसक-लिंग इकारान्त और उकारान्त प्रातिपदिकों के रूप संस्कृत की ही तरह तृतीया से लेकर सप्तमी तक पुंल्लिग प्रातिपदिक के अनुसार और द्वितीया और सम्बोधन में इस प्रकार हैं :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा, द्वितीया	अक्खि, अस्सु	अक्खीनि, अस्सूनि
एवं सम्बोधन	अक्खि, अस्सु	अक्खी, अस्सु

इकारान्त और उकारान्त स्त्रीलिंग प्रातिपदिक के रूप इस प्रकार हैं :—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	जाति, नदी	जातियो, नदियो
	धेनु, सस्सू	धेनुयो, सस्सुयो
द्वितीया	जातिं, नदिं	जाती, नदी
	धेनुं, सस्सुं	धेनू, सस्सू
तृतीया-पंचमी	जातिया, नदिया	जातीहि, नदीहि
	धेनुया, सस्सुया	धेनूहि, सस्सूहि
षष्ठ-चतुर्थी	जातिया, नदिया	जातीनं, नदीनं
	धेनुया, सस्सुया	धेनूनं
सप्तमी	जातिया(-यं),नदिया(-यं)	जातीसु, नदीसु
	धेनुया(-यं) सस्सुया(-यं)	धेनूसु, सस्सूसु
सम्बोधन	जाति, नदि	जातियो, जाती
	धेनु, सस्सु	धेनुयो, धेनू
		नदियो, नदी
		सस्सुयो, सस्सू

इस रूप-प्रक्रिया में ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रथमा एकवचन को छोड़कर शेष ऐसी समस्त विभक्तियों में ह्रस्व और दीर्घ स्वर में अन्त होनेवाले प्रातिपदिकों के रूप में अन्तर नहीं है, और दूसरी बात यह है कि स्वर प्रत्यय के पूर्व ई या इ—इय् में, उ और ऊ—उय् में रूपान्तरित हो जाते हैं। गाथा की भाषा में अपवाद के रूप में प्राचीन ऐतिहासिक रूप के अवशेष मिलते हैं जैसे जात्या>जच्चा। इसी तरह से नद्या, नद्यः>नज्जा और नज्जो रूप भी मिलते हैं। एक ऐसा विचित्र रूप नज्जाओ प्रथमा बहुवचन के लिये मिलता है जो नज्जा को प्रातिपदिक मानकर किया गया है।

५.२ ऐकारान्त प्रातिपदिक का पाली में अभाव है। औकारान्त प्रातिपदिक नौ का नावा में रूपान्तर हो गया है। ओकारान्त प्रातिपदिक गो के कुछ रूप प्राचीन गो, गावो, गोहि, गवं सुरक्षित हैं और बाद की भाषा में इसी को गाव या गावी, गोण प्रातिपदिक में रूपान्तरित भी कर दिया गया है।

५.३ हलन्त प्रातिपदिकों में केवल र्, न् और स् में अन्त होनेवाले प्रातिपादिक के ऐतिहासिक रूप सुरक्षित मिलते हैं और वे भी प्रायः प्रथमा या द्वितीया विभक्ति में। ऐसे प्रातिपदिकों के रूप अजन्त प्रातिपदिकों के सदृश कर दिये गये हैं। रकारान्त प्रातिपदिकों के रूप इस प्रकार हैं:—

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	सत्था	सत्थारो
द्वितीया	सत्थारं	सत्थारो
तृतीया	सत्थरा, सत्थारा, सत्थुना	सत्थूहि, सत्थारेहि
पंचमी	सत्थरा, सत्थारा	सत्थूहि, सत्थारेहि
षष्ठी, चतुर्थी	सत्थु, सत्थुना, सत्थुस्स	सत्थूनं, सत्थारानं
सप्तमी	सत्थरि	सत्थूसु, सत्थारेसु
सम्बोधन	सत्था, सत्थु, सत्थे	सत्थारो

इस रूपावली से स्पष्ट है कि प्रथमा द्वितीया के रूप तो प्राचीन संस्कृत रूप के ही वर्ण-परिवर्तन के साथ पालि में रूपान्तर है, तथा ऐसे ही विभक्तियों में सत्था प्रातिपदिक का सत्थु प्रातिपदिक का विकल्प रूप भी दिया गया है और प्राचीन का भी रक्षण कियूा गया है। समस्त पदों में शास्तृ के लिए सत्थु रूप मिलता है। इसी सत्थु से तृतीया और चतुर्थी, षष्ठी में प्रातिपदिक के रूप गृहीत कर लिये गये हैं। इसी तरह सत्थार शब्द सादृश्य के आधार पर (कम्मारं–कम्मार = सत्थारं–सत्थार) बना लिये गये हैं। इससे तृतीया बहुवचन सत्थारेहि षष्ठी बहुवचन सत्थारानं, सप्तमी बहुवचन सत्थारेसु ये रूप विकसित हैं। पितर् और मातर् शब्दों के रूपों में संस्कृत रूपों की अधिक रक्षा है पर उनमें भी तृतीया, पंचमी, षष्ठी एवं सप्तमी बहुवचन के रूपों में पितु या मातु को ही प्रातिपदिक मानकर प्रातिपदिक रूप स्वीकृत किया गया है। तृतीया और षष्ठी एकवचन में पित्रा से ही व्युत्पन्न पितरा और मात्रा से व्युत्पन्न मातरा रूप मिलता है। इसी प्रकार सप्तमी एकवचन में संस्कृत का ही रूप पितरि और मातरि मिलता है।

अन् में अन्त होनेवाले पुंल्लिग प्रातिपदिक के रूपों में भी प्रथमा और द्वितीया में तो संस्कृत की प्रक्रिया ही मिलती है, केवल द्वितीया बहुवचन में वही रूप मिलता है जो प्रथमा बहुवचन में। तृतीया और पंचमी के रूप एक ही हैं, पर तृतीया, पंचमी एवं षष्ठी बहुवचन के रूपों में अकारान्त, उकारान्त या इकारान्त प्रातिपदिक रूप दिये गये हैं। शेष परिवर्तन वर्ण-संघटना के कारण हैं :—

राजन् तथा आत्मन्	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	राजा अत्ता	राजानो अत्तानो
द्वितीया	राजानं अत्तानं	,, ,,

तृतीया	रञ्ञा / राजिना	अत्तना	राजूहि	अत्तनेहि, अत्तेहि
पंचमी	”	”	”	” ”
षष्ठी, चतुर्थी	”	”	रञ्ञो / राजूनं	अत्तानं
सप्तमी	राजिनि	अत्तनि	राजूसु	अत्तनेसु

नपुंसकलिंग प्रातिपदिक के रूप भी इसी प्रकार चलते हैं पर प्रथमा और द्वितीया एकवचन में अकारान्त प्रातिपदिक की तरह रूप भी मिलते हैं। इनमें अन्त होनेवाले प्रातिपदिकों के दो रूप मिलते हैं—(१) तो इतिहास और (२) इकारान्त प्रातिपदिक के सादृश्य के आधार पर। शतृ और मतुप् प्रत्यय में अन्त होनेवाले संस्कृत शब्दों को त् के अन्त होनेवाले प्रातिपदिक में परिवर्तित कर दिया गया है। केवल प्रथमा, द्वितीया में तथा तृतीया-पंचमी, चतुर्थी, षष्ठी एवं सप्तमी एकवचन में विकल्प के रूप ऐतिहासिक रूप में सुरक्षित मिलते हैं। यही स्थिति अस् में अन्त होनेवाले प्रातिपदिकों की है।

५.४ अब हम सर्वनाम रूप की प्रक्रिया पर जब आते हैं तो सामान्य परिवर्तन उनमें इस प्रकार है—(१) पुरुषवाचक सर्वनामों के अनेक प्राचीन रूप फिर से रखे गये हैं और (२) तृतीया से सप्तमी तक के अन्य सर्वनामों के रूपों में नाम प्रातिपदिक के सादृश्य के आधार पर रचे गये हैं, (३) तृतीया के बाद की विभक्तियों में एक अलग अकारान्त प्रातिपदिक बनाने के कारण है। अब हम एक-एक रूप को नीचे लेते हैं—

	अहं (मयं)
प्रथमा	अहं मयं (वयं तथा मयं का मिश्रण) अम्हे (अस्मे)
द्वितीया	मं, ममं, मे, अम्हे (अस्मे), अस्माकं (अम्हाकं), नो

तृतीया पंचमी	मया अम्हेहि (नरेभिः के वजन पर)
षष्ठी, चतुर्थी	मम, मय्हं, मे अम्हाकं अम्हं, नो
सप्तमी	मयि अम्हेसु

त्वं

त्वं, तुवम्	तुम्हे (त्वत् और युस्मे का मिश्रण)
तं, त्वम् , तुवम् , ते	तुम्हे, तुम्हाकं, वो
तया, त्वया	तुम्हेहि
तव, तुय्हं (मह्यं के वजन पर)	तुम्हाके, तुम्हं, वो
तवं, तुम्हं, ते	
तयि, त्वयि	तुम्हेसु

तं (तद्)

एकवचन		बहुवचन	
पुंल्लिग	स्त्रीलिंग	पुंल्लिग	स्त्रीलिंग
सो, स	सा	ते	ता, तायो (आकारान्त प्रातिपदिक मानकर)
तं	तं	ते	ता, तायो
तेन	ताय (आकारान्त प्रातिपदिक मानकर)	तेहि	ताहि
तम्हा, तस्मा	तस्सा	तेहि	ताहि
तस्स	तस्सा, ताय तिस्सा (ति को प्रातिपदिक मानकर)	तेसं, तेसानं	तासं, तासानं
तस्मिं, तम्हि	तासं, तस्सं तिस्सं, तायं	तेसु	तासु

इदं-इमं (विकल्परूप)

	एकवचन पुंल्लिग	बहुवचन स्त्रीलिंग	एकवचन पुंल्लिग	बहुवचन स्त्रीलिंग
प्रथमा	अयं	अयं (साद्द-श्य के कारण)	इमे	इमा, इमायो
द्वितीया	इमं	इमं	इमे	इमा, इमायो
तृतीया	अनेन, इमिना(इमि को प्रा० मानकर)	इमया (इमा	इमेहि, एहि	इमाहि)
पंचमी	इमस्मा, इमम्हा (अस्मा)	इमाय	,,	,,
षष्ठी-चतुर्थी	इमस्स, अस्स	इमिस्सा, अस्सा इमाय, अस्सा	इमेसं, इमेसानं,	इमासं
सप्तमी	इमस्मिं, इमम्हि अस्मिं	इमिस्सं इमायं, अस्सं	इमेसु, एसु	इमासु

असु, अमु

	एक वचन पुलिंग	एक वचन स्त्रीलिंग	बहुवचन पुलिंग	बहुवचन स्त्रीलिंग
प्रथमा	असु, अमु	असु	अमू	अमू, अमुया
द्वितीया	अमुं	अमुं	अमू	,, ,,
तृतीया	अमुना	अमुया	अमूहि	अमूहि
पंचमी	अमुस्मा अमुम्हा	,,	,,	,,

षष्ठी	अमुस्स	अमुया, अमुस्सा	अमूसं	अमूसं
सप्तमी	अमुस्मि	अमुस्सं	अमूसानं	अमूसानं
	अमुम्हि	अमुयं	अमूसु	अमूसु

यं प्रातिपदिक के रूप प्रथमा, द्वितीया में तम् की तरह है तथा पुल्लिग में शेष विभक्तियों में भी तं की ही तरह है। स्त्रीलिंग में या को प्रातिपदिक मानकर रूप चलाया गया है केवल षष्ठी, सप्तमी एकवचन में और षष्ठी बहुवचन में प्राचीन ऐतिहासिक रूप मिलता है।

सब्ब, विस्स, अञ्ञ, इतर, पर, अपर, पुब्ब, उत्तर, अधर, एकच्च, प्रभृति सर्वनामों के रूप प्रायः यं की तरह चलते हैं केवल अञ्ञ के स्त्रीलिंग के रूप में षष्ठी एवं सप्तमी में की जगह पर अञ्ञि विकल्प रूप आ जाता है।

५.५ संख्या-वाचक शब्दों में द्वि और उभ के प्रथमा एवं द्वितीया के विभक्तियों द्विवचनांत रूप पाली में सुरक्षित हैं। हैं। जैसे द्वे, दुवे, उभो। शेष में इनके बहुवचनांत रूप ही मिलते हैं। इन सभी संख्या वाचक शब्दों के रूप प्रथमा और द्वितीया से ही ऐतिहासिक रूप के संवादी हैं। शेष में उनकी प्रक्रिया बदल गयी है।

६

धातु रूप

६.० धातु रूप प्रक्रिया में पालि संस्कृत से नाम रूप की अपेक्षा और भी अधिक भिन्न है। मुख्य भेद ये हैं (१) द्विवचन का लोप हो गया है (२) भाव कर्मवाच्य में कर्तृवाच्य के ही प्रत्यय जुड़ने लगे हैं। (३) आत्मनेपदी रूप के स्थान पर परस्मैपदी रूप ही स्थान ग्रहण करने लगे हैं। आत्मनेपदी रूप केवल गाथा की भाषा में मिलते हैं। बाद की भाषा में केवल उसका शानच् वाला रूप ही दृष्टिगोचर होता है। (४) पूर्णभूत अर्थात् लिट् पालि में बिलकुल ही लुप्त हैं। (५) लुङ् और लङ् का एकीकरण हो गया है। (६) गाथा की भाषा में वैदिक लेट के भी कुछ अवशेष हैं (७) वर्त्तमान काल की रूप-शृंखला में अकारान्त धातुओं का ही प्राधान्य है जिसके कारण संस्कृत में जो धातु-रूप अकारान्त नहीं थे, वे भी पालि के अकारान्त रूप में भी बहुत अधिक मात्रा में परिवर्तित हो गये हैं, संस्कृत में अय से अन्त होनेवाले को धातु को एकारान्त धातुओं में परिवर्तित कर दिया गया है (८) लट् लकार या वर्त्तमान काल के धातु-रूप को ही धातु का आधार मान लिया गया है और उसी में प्रत्यय जोड़ने की प्रक्रिया पालि में होने लगी है, जिसके कारण संस्कृत की कदाचित् पालि की धातु-रूप-प्रक्रिया अधिक सरल हो गयी है (९) विशेष रूप से प्राचीन भाषा में आत्मनेपदी रूपों में बहुत ही प्राचीन रूप संरक्षित है (१०) विधि लिङ् आशीर् लिङ् का एकीकरण हो गया है।

६.१ वर्तमान काल की रूप प्रक्रिया—जिसके अन्तर्गत निर्देश (लट्), अभिप्राय (लेट्), आज्ञा (लोट्), तथा विधि (विधि लिङ्०) ये चार भाव आते हैं। पहले हम लट् का रूप लें जो कि पालि में रूप-प्रक्रिया का मुख्य आधार है। पालि में विकरण वर्तमान काल के अलावा भी लगता है, वस्तुतः धातु विकरणयुक्त होकर के ही रूपप्रक्रिया में आती हैं। पहले हम अकारान्त रूपप्रक्रिया का नमूना लें—

परस्मैपद्

	एक वचन	बहु वचन
अन्य पुरुष	लभति	लभन्ति
मध्यम पुरुष	लभसि	लभथ
उत्तम पुरुष	लभामि	लभाम

आत्मनेपद्

अन्य पुरुष	लभते	लभंते, लभरे (वैदिक रूप की अनुस्मृति)
मध्यम पुरुष	लभसे	(लभव्हे)
उत्तम पुरुष	लभे	(लभम्हे)

(१) गाथा की भाषा में लभामि के विकल्प रूप मे लभम् भी मिलता है।

(२) आत्मनेपदी रूप गाथा की भाषा में या कृत्रिम उत्तर भाषा में ही मिलता है।

(३) म्हे रूप महे का संक्षिप्त रूप है। कहीं-कहीं महे की जगह पर मसे भो मिलता है, कहीं-कहीं मसे और म्ह इन दोनों का मिश्रण म्हसे।

६.२ लेट् रूप बहुत विरल हैं। लेट् में केवल धातु और प्रत्ययके बीच एक अतिरिक्त प्रत्यय जुटता है। इसके उदाहरण

पालि में अधिक नहीं हैं। कहीं-कहीं ये छन्द के अनुरोध से भी अ की दीर्घता सम्भव है। इसलिये इसका प्रकट रूप यहाँ देना आवश्यक नहीं है।

६.३ अनुज्ञा (लोट), इसकी रूप प्रक्रिया इस प्रकार है:—

परस्मैपद्

	एक वचन	वहु वचन
अन्य पुरुष	लभतु	लभन्तु
मध्यम पुरुष	लभ, लभाहि	लभथ
उत्तम पुरुष	लभामि	लभाम

आत्मने पदी

अन्य पुरुष	लभतं	लभंतं
मध्यम पुरुष	लभस्सु	लभव्हो
उत्तम पुरुष	लभे	लभामसे

(१) परस्मैपद् के दोनों उत्तम पुरुष के रूप लट् के रूप के ही विस्तार हैं।

(२) मध्यम पुरुष एक वचन का विकल्प रूप अनकारान्त धातु रूप से आया है।

(३) मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप भी लट् से आया है।

(४) आत्मनेपदी रूपों में उत्तम पुरुष एकवचन का रूप लट से आया है और मध्यम पुरुष एकवचन का रूप स्व का वर्णात्मक रूपान्तर है। व्हो ध्वं से निकला हुआ है, पर इसमें अनुस्वार को विसर्ग के रूप को अज्ञानवश मान लिया गया है।

६.४ विधि लिङ् रूप प्रक्रिया में प्राचीन रूप के साथ-साथ परस्मैपद् के अन्य रूपों की रचना का भी उदाहरण मिलता है—

परस्मैपद्

	एकवचन	बहुवचन
अन्य पुरुष	लभे, लभेय्य, लभेय्याति	लभेय्युं, लभेय्यु
मध्यम पुरुष	लभे, लभेय्य, लभेय्याति	लभेथ, लभेय्याथ
उत्तम पुरुष	लभेय्यामि, लभे, लभेयं	लभेम, लभेमु, लभेय्याम

आत्मनेपद्

अन्य पुरुष	लभेथ	(लभेरम्)
मध्यम पुरुष	लभेथो	(लभेय्यव्हो)
उत्तम पुरुष	(लभेय्यं)	(लभेमसे), (लभेयम्हे)

(१) लभेयं का ही वर्णनात्मक रूपान्तर है लभेय्यं। बहुवचन में थ (संस्कृत के त के लिये) लट् से लिया गया है।

(२) उसी तरह से संस्कृत के लभे>त् लभेः के वजन पर उत्तम पुरुष एकवचन में लभेम् को कल्पित रूप मानकर पालि में लभे रूप प्राप्त होता है।

(३) येय्य प्रत्यय आशीर् लिङ् और विधिलिङ् के सम्मिश्रण का परिणाम है।

(४) आत्मनेपद् रूप में मध्यम पुरुष एकवचन में लभेथो, लभेथा के स्थान पर है। कहीं-कहीं लभेथ भी मिलता है।

(५) लभेत् की जगह पर लभेथ अन्य पुरुष एकवचन में असामान्य है।

६.५ इस अकारान्त रूप प्रक्रिया में अय में अन्त होनेवाली धातु नहीं आती, क्योंकि वे संकोचन के द्वारा एकारान्त बन जाती हैं जैसे—जयति>जेति, नयति>नेति, इसी तरह से अव में अन्त होनेवाली धातुओं के स्थान पर ओकारान्त धातुएँ आ जाती हैं, जैसे—भवति>होति, य में अन्त होनेवाली धातुएँ भी अकारान्त ही जैसी चलती हैं। इस प्रकार संस्कृत अकारान्त रूप विस्तार

से पालि में तीन रूप विस्तारों ने जन्म लिया है अकारान्त, एकारान्त और ओकारान्त। प्राचीन भाषा में अकारान्त रूप ही अधिक प्राप्त हैं।

६.६ अनकारान्त धातुओं में से हन्, अस्, आकारान्त धातु, इ ये ही अदादिगण में सुरक्षित रूप हैं, शेष का अकारान्त में ही विलयन हो गया है। अस् धातु का रूप यों है—

लट्

	एकवचन	बहुवचन
अन्यपुरुष	अस्ति, अत्थि	सन्ति (सन्ते),-विरल रूप
मध्यमपुरुष	असि	स्थ
उत्तमपुरुष	अस्मि, अम्हि	स्म, म्ह

लोट्

अन्यपुरुष	अत्थु	

लिङ्

अन्यपुरुष	सिया,	सियुं, अस्सु
मध्यम पुरुष	अस्स	स्थ
उत्तमपुरुष	सियं, अस्सं	अस्साम

(१) इसमें भी केवल गाथा की भाषा को आत्मने पदी रूप कभी-कभी मिलते हैं।

(२) विधिलिङ् के सिय, सिया और सियुं रूप संस्कृत से ही स्वरभक्ति के द्वारा प्राप्त हैं।

६.७ जुहोत्यादिगण की धातुओं में दा, धा के रूपों के अवशेष प्राप्त हैं। दा के कई रूप पालि में मिलते हैं—ददा, दद, दे और दिय।

६.८ इसी प्रकार रुधादिगण की धातुओं को भी अकारान्त

बना लिया गया है। केवल क्र्यादिगण की धातुओं के नाकारान्त रूप को प्रमुखता दे दी गयी है। संस्कृत की तरह ना और नी दो रूप, गुण और ह्रसित श्रेणी के रूप में नहीं मिलते। ग्रह् धातु के गण्हा, गण्ह ये दोनों रूप मिलते हैं। स्वादिगण की धातुओं का पालि में प्रायः या तो अकारान्त धातुओं में विलयन किया गया है या क्रयादिगण में, जैसे प्राप्नोति>पापुनाति। कहीं-कहीं इन्हें ओकारान्त भी बना दिया गया है।

६.९ भविष्यत् काल (लृट्) और हेतहेतुमद्भूत (लृङ्) के रूप में दो प्रकार हैं, जो संस्कृत के स्य और इष्य से उद्गत हैं केवल उत्तम पुरुष एकवचन के स्थान पर अम् और उत्तम पुरुष बहुवचन मो के स्थान पर म इसमें मिलता है। इसकी रूप प्रक्रिया में लट् की रूप प्रक्रिया से और कोई भेद नहीं है। यह जरूर है कि इसमें कुछ ऐतिहासिक रूप भी मिल जाते हैं जैसे शक्ष्यति>सक्खिति या जैसे कर्ष्यामि>कस्सम्। कहीं-कहीं स्य और इष्य के स्थानपर हि या इहि भी मिलता है। लङ् की रूप प्रक्रिया संस्कृत के ही आधार पर है। अनकारान्त धातुओं की रूप-प्रक्रिया में केवल यही विशेषता है कि उनका विकरण लट् और लङ् में भी संरक्षित रहता है।

६.१० भूतकाल की रूप-प्रक्रिया की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें केवल लुङ् ही मिलता है। लङ् और लिट् का लोप हो जाता है। दूसरी विशेषता यह है कि पालि में अडागम का प्रायः लोप हो जाता है। अड् के लोप के सम्बन्ध में वाकरनाकल ने यह नियम बनाने की कोशिश की है—(१) एकाक्षरी धातुओं के बाद अडागम रहता है। जैसे—अदं, अगा। (२) अडागम द्व्यक्षरी धातुओं में भी अकारान्त और सकारान्त लुङ् रूपों में सुरक्षित रहता है। (३) भाषा के प्राचीनतम युग में अडागम इष् में अन्त होनेवाले लुङ् रूपों से

स्वैच्छिक है, पर इस प्रकार के रूपों के बाद भी भाषा में अडागम का लोप निश्चित है। (४) त्र्यक्षरी धातुओं में अडागम निश्चित रूप से संरक्षित है। (५) इस आगम का लोप पहले कम पर बाद की भाषा में अधिक मिलता है। लुङ् के पालि में चार प्रकार मिलते हैं—

(१) पहला प्रकार जिसमें प्रत्यय और धातु के बीच में कुछ नहीं जुड़ता है। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार है—दा धातु परस्मैपद—

	एक वचन	बहुवचन
अन्यपुरुष	अदा	अदू, अदुं
मध्यमपुरुष	अदो (अदा)	अदत्थ
उत्तमपुरुष	अदं	अदम्ह

यह रूप प्रक्रिया संस्कृत से साक्षात् रूप में व्युत्पन्न है।

(२) दूसरा प्रकार जिसमें अ धातुओं और प्रत्ययों के बीच में जुड़ता है। जैसे गम् धातु से।

	एकवचन	बहुवचन
अन्युपुरुष	अगमा	अगमुं
अध्यमपुरुष	अगमा	अगमथ (अगमत्थ)
उत्तमपुरुष	अगमं	अगमाम (अगमम्ह)

इसमें अगमम्ह और अगमत्थ ये सकारान्त लुङ् की प्रक्रियासे आये हैं। इस प्रकार के कुछ आत्मने पद रूप भी हैं।

(३) तीसरा प्रकार सकारान्त लुङ् जैसे श्रु और कृ धातु से ये रूप बनते हैं—

	एकवचन	बहुवचन
अ० पु०	अस्सोसि, अकासि	अस्सोसुं, अकासुं (अकंसु)
म० पु०	अस्सोसि, अकासि	अस्सुत्थ, अकत्थ
उ० पु०	अस्सोसिं, अकासिं	

इसमें ओ की जगह पर ऊ बहुवचन में संकोचन के द्वारा है। इसी प्रकार ष्ट के स्थान पर इसमें थ भी असामान्य है। इसमें कुछ आत्मने पद रूप भी हैं।

(४) चौथा प्रकार इष् में होनेवाला लुङ् जैसे गम् धातु से

	एकवचन	बहुवचन
अन्यपुरुष	अगमि	अगमिसु, अगमिंसु
मध्यमपुरुष	अगमि	अगमित्थ
उत्तमपुरुष	अगमिसं, अगमिं	अगमिम्ह

पहला प्रकार गाथा की भाषा तक ही अधिकतर सीमित है और इसके अन्तर्गत स्वरान्त धातुएँ ही आती हैं।

दूसरे प्रकार में अनेक प्रकार की धातुएँ आती हैं, लेकिन इनके सम्बन्ध में कोई नियम नहीं है।

तीसरे प्रकार में आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऊकारान्त और ऋकारान्त धातुएँ आती हैं। कुछ ऐतिहासिक रूप भी इसके अन्तर्गत मिलते हैं। कहीं-कहीं इन धातुओं के अनेक प्रकार के भी रूप मिलते हैं। जैसे अदा, अदासि।

चौथे प्रकार के रूप ही गद्य में अधिक मिलते हैं और सबसे अधिक रूप इसी के अन्तर्गत मिलते हैं।

६.११ पालि में सहायक क्रिया की सहायता से रूप बनने की क्रिया अभी कुछ ही शुरू हुई है। जैसे ठितोम्हि, सयानोम्हि या समादाय वंत्तति।

६.१२ कर्मवाच्य य, इय या ईय छोड़कर बनता है पर इसकी रूपप्रक्रिया परस्मैपद में ही चलती हैं। इसी प्रकार प्रेरणार्थक भी अय लगाकर बनता है। अय का ए रूप हो जाता है परन्तु प्रायः पुक् का आगम पालि के नित्य रूप में आता है इसके कारण द्वित णिजत रूप पालि में अत्यधिक संख्या में

मिलने लग गये हैं जैसे पपापेति, कम्पापेति। पालि में सन्नन्त रूप अधिक नहीं हैं, पर जो हैं वे वैदिक रूप से ही व्युत्पन्न हैं। पालि में यङ्‌०लुङ०न्त रूप भी कम हैं वे संस्कृत से ही व्युत्पन्न हैं। नाम धातु की प्रक्रिया आय, आपय, और अय में बहुत अधिक व्यापक है।

७

शब्द रचना

७.१ पालि शब्द रचना का विचार दो भागों में विभाजित किया जा सकता है कृदन्त प्रक्रिया और तद्धित प्रक्रिया। कृदन्त प्रक्रिया के अन्तर्गत मुख्यतः निम्नलिखित प्रत्यय आते हैं :—

(१) शतृ और शानच् के लिये क्रमशः त और मान (शानच प्रत्यय पालि में आत्मनेपदी के अलावा परस्मैपदी धातु से भी लगते हैं), मान के स्थान पर आन में अन्त होनेवाले रूप पालि में केवल गाथा तक सीमित है।

(२) निष्ठा के स्थान पर त, इत (सबसे अधिक रूप इसी के अन्तर्गत मिलते हैं) न और तवतु के स्थान पर तवंत और ताविन् रूप मिलते हैं।

(३) तव्यत् के स्थान पर तब्ब भविष्यत् के अर्थ में अनीयर के स्थान पर अनीय या अनेय्य और यत् के स्थान पर य (केवल प्राचीन भाषा में) मिलता है। इनके अलावा ताय, तय्य, तेय्य, में अन्त होनेवाले भविष्यदर्थक क्रिया-प्रत्यय पालि में भी मिलते हैं।

(४) तुमुन् के अर्थ में पालि में तुं अनुस्वारान्त के अलावा तवे (वैदिक रूप से प्राप्त) तवे, तुये, ताये, तसे रूप भी पालि में मिलते हैं। पालि में तुमुन् के रूप प्रायः लट् लकार की धातु-प्रक्रिया से सम्बद्ध है।

(५) पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ में क्त्वा और ल्यप् के लिये त्वा और य रूप पालि में मिलते हैं। कहीं-कहीं त्वान रूप भी है

पर इसका प्रयोग प्रायः प्राचीन भाषा में है। पालि में ल्यप् रूप अधिक व्यापक नहीं है और उपसर्ग के योग में भी त्वा रूप ही अधिक प्रचलित हैं। ल्यप्वाला रूप अधिकतर स्वरान्त धातुओं तक सीमित हैं और ल्यप् के रूप में स्वरभक्ति के कारण य के पूर्व अधिकतर इ भी आ जाता है।

७.२ तद्धित प्रक्रिया के अन्तर्गत मुख्यतः निम्नलिखित प्रत्यय आते हैं—

(१) तुलनार्थक प्रत्यय ईयसुन् और इष्ठ के स्थान पर येय्य और येट्ठ मिलते हैं, पर इस अर्थ में अधिकतर तर और तम प्राप्त होते हैं।

७.३ स्वार्थिक प्रत्यय के रूप में क, अक और इक बहुत अधिक व्यापक हैं।

७.४ भावार्थिक प्रत्यय त्व त्वं भी व्यापक हैं। विशेषणार्थक प्रत्यय इक इम इस यस प्रचलित हैं।

अभिलेखीय प्राकृत

८.० मध्यभारतीय आर्यभाषा के द्वितीय पर्व में अभिलेखीय प्राकृत भाषाएँ आती हैं। इनकी सामग्री मुख्यतः अशोक के अभिलेखों, महास्थान, जोगीमारा, सौहगौरा, बेसनगर, हाथी-गुम्फा, सिंहल के अभिलेखों तथा निय और खोतान प्रदेश के लेखों में जो प्राप्त हुई हैं और काल-विभाजन की दृष्टि से इनका समय ईसा के ४०० पूर्व से लेकर ईसा के आस-पास तक है। देश-भेद से इनके मुख्यतः चार भाग किये जा सकते हैं—(१) सुदूर उत्तरी, (२) उत्तर पश्चिमी, (३) मध्य, (४) प्राच्य। प्राच्य के अन्तर्गत ही मध्य प्राच्य और प्राच्य—ये इनकी विभाषाएँ आती हैं और मध्य के अन्तर्गत ही पश्चिमी और मध्य भाषाएँ आती हैं। उत्तर पश्चिम और सुदूर उत्तर की भाषाओं के लेख खरोष्ठ्री लिपि में और देश ब्राह्मी लिपि में प्राप्त होते हैं। खरोष्ठ्री लिपि की तीन विशेषताएँ मुख्य हैं—(१) ये दाएँ से बाएँ की ओर लिखी जाती हैं, (२) इनका दीर्घ स्वर अलग-अलग संकेतित नहीं हैं, (३) इनका द्वित्ववाला संयुक्ताक्षर एकाक्षर के रूप में ही लिखे जाते हैं।

८.१ सुदूर उत्तर की भाषा, जिसे निय प्राकृत भी कहा गया है, शानशान राज्य भाषा थी और इसकी आधार सामग्री वस्तुतः राजकीय आदेशों और पत्रों के रूप में सुरक्षित हैं। इनका समय एक से लेकर तीन शताब्दी हैं। यह भाषा उत्तर-पश्चिम भारत से गई हुई है पर इस पर ईरानी, तुखारी और मंगोल भाषाओं

का भी प्रभाव स्पष्ट ही है। खोतान प्रदेश की भाषा में लिखा धम्मपद, जो इसी भाषा के प्राचीन रूप में लिखा गया है, इसी सुदूर उत्तर भाषा की सामग्री प्रस्तुत करता है। इसकी मुख्य वर्ण संघटनात्मक विशेषताएँ ये हैं—(१) अन्त्य य या ये>ई। जैसे भावनायां>भमणइ, मूल्य>मुलि, (२) आद्य स्थिति में न आनेवाला ए भी इ में परिवर्तित हो जाता, जैसे उपेतः>उवितो, (३) अन्त्य ओ>उ, जैसे प्रातः>प्रतु, (४) ह्, प्र और त्र के बाद आनेवाला उ>ओ, जैसे वहु>वहो, (५) दो स्वरों के बीच में आनेवाला स्पर्श ऊष्म और ओष्म वर्ण घोष हो जाता है और स्पर्श प्रायः ह श्रुति में अवशिष्ट रह जाते हैं। जैसे यथा>यध, सतिके>सदिइ, भोग>भोह। साथ ही अनुनासिक और ऊष्म के संयोग से भी अघोप व्यंजन घोष रूप धारण कर लेता है, जैसे संकल्प>सगप, पञ्च>पज, संस्कार>सघर, हंति>हदि, (६) ईरानी भाषा के प्रभाव से घोष महाप्राण का अल्प प्राणीकरण भी दृष्टिगोचर होता है। जैसे भूमि>बूम, सध>सद, (७) कहीं-कहीं ऊष्म उच्चारण के प्रावल्य के कारण ध भी ऊष्म रूप धारण कर लेता है। जैसे मधुरो>मसुरु, मधु>मसु, (८) तीनों ऊष्म वर्ण इसमें सुरक्षित हैं पर प्रधानता दन्त्य ऊष्म की है। साथ ही इसमें घोष ज और झ और रा तथा ड़ भी सुरक्षित हैं, (९) कभी-कभी व>म, जैसे भावना>भमन, (१०) ऋ>अ उ रु ऋ, जैसे संवृतः>सम्‌ऋतो, स्मृति>स्वति, (११) अन्त्य विसर्ग ओ या उ में परिणत हो जाता है, (१२) र और ल के साथ संयुक्ताक्षर सुरक्षित मिलते हैं, (१३) अनुनासिक के साथ अघोष स्पर्श के संयोग होने पर अनुनासिक का और घोष स्पर्श के साथ संयोग होने पर स्पर्श का समीकरण हो जाता है। जैसे पंडित>पणिदो, (१४) श्र>ष जैसे श्रावक>षवक, क्ष और श्र संयुक्ताक्षर सुरक्षित हैं पर ष्ट और ष्ठ का समीकरण स्पर्श में हो गया है। म्, त् के बाद व् में,

ऊष्व् के बाद प् में परिणत हो जाता है, जैसे आत्मनः>अत्वन, विश्वसेत्> विस्पशि। रूप संघटना में मुख्य विकास ये हैं—(१) कहीं-कहीं द्विवचन रक्षित मिलता है, (२) षष्ठी एक वचन का प्रत्यय अस या अज्ञ है। (३) तिङन्त रूप केवल लट्, लृट्, लोट् और विधि लिङ् के ही मिलते हैं। विधि लिङ् के प्रत्यय प्रायः मुख्य प्रत्यय ही हैं। अतीत कालिक क्त प्रत्यय के साथ अन्ति लगाकर अन्य पुरुष बहुवचन में और अस् धातु के अन्य रूप के साथ अन्य वचनों और पुरुष में। जैसे दत्तोसि> दितेसि, गताः> गतंति (४) इसमें त्वी से निकला हुआ ती और त्वान् से निकला हुआ त्मन् और य से निकला हुआ इ रूप पूर्वकालिक क्रिया के लिए मिलते है, (५) तुमुन् के रूप ल्युट् प्रत्ययान्त कृदन्त के चतुर्थी के एकवचन के रूप में विकसित हैं। जैसे गच्छनाय> गछंनये।

८.२—उत्तर-पश्चिमी भाषा के दो रूप मिलते हैं—(१) शह-वाजगढ़ी में पाये गये अशोक अभिलेखों में, (२) मानसेरा में पाये गये अशोक अभिलेखों में। वस्तुतः मानसेरा की भाषा मध्य प्राच्य भाषाओं से प्रभावित उत्तर-पश्चिम की भाषा है। उदाहरण के लिए अकारान्त प्रातिपदिक प्रथमा एकवचन में शहवाजगढ़ी में—ओ में अन्त होनेवाले रूप मिलते हैं और मानसेरा में ए में। शहवाजगढ़ी आद्य भ>ह में परिवर्तित नहीं होता जबकि मानसेरा में होता है। इस उत्तर-पश्चिम वर्ण संघटना की मुख्य विशेषताएँ ये हैं—(१) ऋ>रि, रु या र (शहवाजगढ़ी में बाद में आनेवाला दन्त्य स्पर्श का मूर्धन्यीकरण हो जाता है, मानसेरा में नहीं, (२) क्ष>छ जैसे मोक्ष> मोछ (३) स्म और स्व> स्प, जैसे स्मिन> स्पि, स्वर्गम्> स्पग्रम्, (४) र के साथ संयुक्ताक्षर प्रायः समीकृत नहीं होता, (५) स के साथ संयुक्ताक्षर कभी-कभी समीकृत हो जाते हैं और उनके कारण कभी-कभी इनके बाद

आनेवाला दन्त्य स्पर्श का मूर्धन्यीकरण होता है और कभी नहीं भी होता। दन्त्य स्पर्श मूर्धन्यीकरण दूसरी भाषाओं की अपेक्षा इसमें अधिक परिलक्षित हैं, (६) व्यंजन के बाद आनेवाला य व्यंजन में समीकृत होता है जैसे कल्याण> कलण, (७) ज्ञ और न्य> ञ जैसे यज्ञ> यञ, अन्य> अञ। आद्य स्थिति में न आनेवाला ह प्रायः क्षीण ध्वनि होने के कारण लुप्त-सा लिखा जाता है। संक्षेप में संघटना की दृष्टि से यह संस्कृत की दूसरी भाषाओं की अपेक्षा अधिक समीप है, पर रूप संघटना पर यह पश्चिमी मध्य भाषा की अपेक्षा संस्कृत से बहुत विप्रकृष्ट है, क्योंकि इसमें तिङन्त प्रक्रिया संस्कृत से सर्वथा पृथक् है।

८.३ मध्य भाषा की दो शाखाएँ कही जाती हैं—(१) दक्षिण-पश्चिमी जो गिरनार के अशोक अभिलेखों में सुरक्षित हैं और (२) मध्य जो बेसनगर और हाथीगुम्फा अभिलेखों की भाषा में बाद में सुरक्षित है। इसी मध्य भाषा का साहित्यिक रूप पालि भाषा है और इसी का उत्तरकालीन विकसित रूप शौरसेनी प्राकृत है। इस भाषा की वर्ण संघटनात्मक मुख्य विशेषताएँ ये हैं—(१) इसमें तीन ऊष्मों के स्थान पर केवल स मिलता है और प्रायः इनके साथ संयुक्ताक्षरों का समीकरण नहीं होता। जैसे अस्ति> अस्ति, हस्ति> हस्ति, स्था> स्टित और तिष्ठन्> तिस्टन्तो (३) क्ष> च्छ, जैसे वृक्ष> वृच्छ (४) र के साथ संयुक्ताक्षरों का समीकरण होता है पर सार्वत्रिक नहीं है। य के साथ संयुक्ताक्षरों का समीकरण होता है केवल व्य रूप सुरक्षित मिलता है, (५) ऋ> अ या उ, जैसे मृग> मग, वृत्त> वुत, (६) त्व और त्म> त्प, द्व—द्व, ह्म्> म्ह। इनकी वर्णसंघटना में संस्कृत का प्रभाव और भाषाओं की अपेक्षा अधिक है। इसीमें आत्मनेपदी रूप सबसे अधिक सुरक्षित है, साथ ही सुबन्त रूप भी इसमें अधिक प्राचीन हैं। पूर्वकालिक क्रिया के लिए तु, तवे, त्या और य

प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। इसमें लुङ् और लङ् दोनों के रूप भी सुरक्षित हैं।

८.४ प्राच्य भाषा के दो रूप हैं—(१) मध्य प्राच्य और प्राच्य, मध्य प्राच्य भाषाओं के नमूने कालसी(देहरादून जिले में), तोपरा, वैराट, गुजर्रा, के अभिलेखों में सुरक्षित हैं तथा प्राच्य भाषा के रूप सोहगौरा, रुम्मिनदेई, लौरिया, सारनाथ, रमपुरवा, जौगड़ और धौली के अभिलेखों में सुरक्षित हैं। मध्य भाषा की मुख्य वर्णसंघटनात्मक विशेषताएँ ये हैं—(१) र>ल अन्त्य ओ (>अः)>ए मध्यवर्ती औ>ए, क्ष>ख, ऋ>अ इ उ स्मिन्> अंसि। संयुक्ताक्षरों के समीकरण की प्रवृत्ति प्रायिक है। भ>ह। स्वर मध्यवर्ती क>ग सार्वत्रिक नहीं है। दन्त्य ध्वनि तालव्य ध्वनि के सन्निकर्ष में तालव्य और मूर्धन्य के सन्निकर्ष में मूर्धन्य में प्रायः समीकृत होती है। (२) प्राच्य भाषा की अपेक्षा मध्य प्राच्य की अपनी विशेषताएँ ये हैं—(१) तीनों ऊष्म सुरक्षित हैं (२) अन्त्य अ प्रायः दीर्घ हो जाता है। स्वार्थिक क का क और क्य दोनों रूपों में अत्यधिक बाहुल्य और स्म>फ जैसे तुष्मे> तुफे। वर्णसंघटना की दृष्टि से मुख्य विशेषताएँ ये हैं—(१) इसमें अहं के स्थान पर हकं और मम को प्रातिपदिक मानकर रूप प्रक्रिया मिलती है। इसमें शानच् प्रत्यय के लिए मीन रूप प्राप्त होता है, जैसे पायमीन।

८.५ अश्वघोष के नाटकों में पायी जानेवाली प्राकृत में इन अभिलेखों की भाषा का एक विकसित रूप तथा साहित्यिक प्राकृतों का पूर्वरूप पाया जाता है। अश्वघोष की प्राकृत का नमूना भी जिन पांडुलिपियों से प्राप्त है, वे पांडुलिपियाँ तिथिक्रम में अन्य नाटकों की पांडुलिपियों की अपेक्षा प्राचीनतर हैं। इसलिए भी उस भाषा का वास्तविक रूप अधिक सुरक्षित है।

९

साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ

९.० साहित्यिक प्राकृत भाषाओं के अन्तर्गत प्राकृत वैयाकरणों द्वारा व्याकृत भाषाएँ आती हैं। इन भाषाओं का उपयोग मुख्यतः धार्मिक और लौकिक साहित्य की रचना में हुआ है। यद्यपि इनके नाम देशगत हैं, पर इन्हें इन देशों की भौगोलिक सीमा में बाँधना उपयुक्त नहीं है। ये समस्त भाषाएँ पृथक्-पृथक् विकास अवस्थाओं का निदर्शन कराती हैं पर इनमें कुछ-कुछ प्रदेशगत वैशिष्ट्य भी है। इन भाषाओं का सम्बन्ध इसीलिए कुछ-कुछ हद तक पूर्ववर्ती अभिलेखीय विभाषाओं से स्थापित किया जा सकता है। ये भाषाएँ ये हैं—महाराष्ट्री, शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी, पैशाची। वस्तुतः विकास में शौरसेनी और महाराष्ट्री विकास के अनुक्रम में क्रमशः पूर्व और उत्तर हैं। शौरसेनी में मध्यवर्ती एकल दन्त्य ध्वनियों का मात्र घोषीकरण होता है लोप नहीं, महाराष्ट्री में एक अवस्था आगे जाकर लोप भी हो जाता है। जैसे हृदय>हिदअ (शौ०) और हिअअ (म०)। शौरसेनी में रूप संघटना भी संस्कृत के अधिक समीप है। अर्धमागधी और मागधी क्रमशः मध्यप्राच्य और प्राच्य भाषाएँ हैं। अर्धमागधी में प्राचीन जैन साहित्य सुरक्षित है, पर प्रस्तुत रूप बहुत बाद का है क्योंकि प्राचीन जैन आगमों को लिपिबद्ध करने का कार्य ईसा की चौथी शताब्दी की बाद ही हुआ है। मागधी भाषा के उदाहरण केवल संस्कृत नाटकों में अधम पात्रों की भाषा में मिलते हैं और उसके अनेक उपभेद भी प्राप्त होते हैं। पैशाची

के बहुत ही विरल रूप यत्रतत्र प्राकृत व्याकरणों में मिल जाते हैं। जनश्रुति है कि पैशाची में ही गुणाढ्य ने ईसा के आसपास वृहत्-कथा की रचना की थी, किन्तु वह मूलपैशाची में अब लुप्त हो गयी हैं। उसके तीन संस्कृत-संस्करण जरूर मिलते हैं। इन्हीं साहित्यिक प्राकृतों के अन्तर्गत ही आधुनिक सिंहली की पूर्व-वर्तिनी एड़ु भाषा भी आती है। शौरसेनी भाषा का उपयोग संस्कृत-नाटकों में उत्तम स्त्री पात्रों और मध्यपुरुष-स्त्री—दोनों पात्रों की भाषाओं के रूप में हुआ है। दसवीं शताब्दी में राज-शेखर ने शौरसेनी प्राकृत में ही पूरा कर्पूरमंजरी नामक सट्टक लिखा। महाराष्ट्री का उपयोग काव्य की भाषा के रूप में, विशेष रूप से मुक्तक काव्य की भाषा के रूप में हुआ। हाल की गाहा-सत्तसई मुक्तक काव्य का उत्कृष्ट संकलन है। बाद में कंसवहो, रावणवहो, गउडवहो जैसे महाकाव्यों में भी हुआ। इन सभी साहित्यिक प्राकृतों की वर्ण संघटना की मुख्य विशेषताएँ जो सब में समान हैं ये हैं—(१) संयुक्ताक्षरों की संघटना प्रथम मध्य भारतीय भाषा काल के बहुत कुछ सदृश होते हुए इस माने में उससे आगे विकसित है कि इसमें संयुक्ताक्षरों की संख्या कुछ अधिक सीमित और व्यवस्थित हो गयी है। य र ल व के साथ संयुक्ताक्षर इसमें नहीं मिलते, (२) दो स्वरों के बीच में आने-वाला एकल व्यंजन अब क्रमशः या तो लुप्त होने लगा है या केवल ह श्रुति या य श्रुति के रूप में अवशिष्ट रहने लगा है। जैसे मृग>मिअ और मिय (अर्धमागधी) या रासभ>रासह। केवल मूर्धन्य स्पर्श व्यंजन प्रायः अपनी सत्ता कायम रखते हैं तथा शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी में दन्त्य ध्वनियाँ भी अपनी सत्ता कायम रखती हैं। इन तीनों में दन्त्य ध्वनियों के घोषी-करण की प्रवृत्ति भी मिलती है। पैशाची भाषा में मध्यवर्ती और आद्य एकल घोष व्यंजनों का अघोषीकरण भी व्याकरणों में

निर्दिष्ट मिलता है। जैसे दामोदर>तामोतर और गगन>ककन, (३) व्यत्यय एवं समीकरण के कारण भी वर्ण संघटना में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा है। जैसे लघुक>हलुअ, (४) न ण और ल में र ल द और ड में परस्पर विनिमय की प्रवृत्ति भी भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूप से दृष्टिगोचर होने लगी हैं। महाराष्ट्री में ण न के लिए समस्त स्थितियों में ण का आना सुलभ है। अर्धमागधी में आद्य स्थिति में न के लिए ण का आना असम्भव है और पैशाची में ण के लिए भी समस्त स्थितियों में न का ही आना निर्दिष्ट है। इसी प्रकार र के लिए ल की प्रवृत्ति मागधी में अधिक अर्धमागधी में उससे कम तथा ल के लिए भी र की प्रवृत्ति पैशाची में बहुत अधिक दूसरी पश्चिमी भाषाओं में कम दृष्टिगोचर होती हैं। संख्या वाचक शब्द में द के लिए र प्रायः सार्वत्रिक है, (५) इन सभी भाषाओं में अर्धमागधी को छोड़कर विवृत्ति (Hiatus) की प्रवृत्ति अत्यधिक है और विवृत्ति के अनन्तर सवर्ण स्वरों का प्रश्लेष भी दृष्टिगोचर होता है। अर्ध-मागधी के य श्रुति अपनी अलग विशेषता रखता है। (६) इन समस्त भाषाओं में केवल एक ही ऊष्म मिलता है। महाराष्ट्री शौरसेनी और अर्धमागधी में स और मागधी में श। रूप संघटना की दृष्टि से इन भाषाओं की सामान्य विशेषताएँ ये हैं—(१) हलन्त प्रातिपदिक का अजन्त प्रातिपदिक में सर्वथा विलयन हो गया है (२) तिङन्त प्रक्रिया में लुङ् और लङ् एवं लृट् का भी सर्वथा अभाव मिलता है, केवल अर्धमागधी में लङ् के कुछ रूप सुरक्षित मिलते हैं। अतीत काल का बोध कराने के लिए क्त प्रत्यय का प्रयोग अधिक व्यापक हो चला है। भविष्यत् काल के बोध के लिए भी इसी प्रकार तव्यत् और अनीयर् प्रत्ययों के प्रयोग भी प्रचलित हो चले हैं (३) आत्मनेपद का परस्मैपद में सर्वथा विलयन हो गया है (४) पालि में सुरक्षित ऐतिहासिक रूप

क्रमशः अब नई अवस्था में खप नहीं सकने के कारण लुप्त हो रहे हैं, (५) वर्ण संघटना में और अधिक विकास होने के कारण रूप संघटना में समीकरण और सदृशीकरण अपने उत्कर्ष पर है। इसके परिणामवश अर्थ की स्पष्टता के लिए परसर्गों का प्रयोग भी प्रारम्भ हो गया है (६) स्वार्थिक प्रत्ययों का प्रयोग अत्यधिक इल, आल, छ ट ड, त्वन जैसे नये प्रत्ययों का आविर्भाव भी हुआ है।

९.१ महाराष्ट्री की अपनी अलग विशेषतायें निम्नांकित हैं—(१) महाराष्ट्री में स्वरमध्यवर्ती स्पर्श व्यंजनों का सर्वत्र लोप हो गया है। महाप्राण स्पर्श व्यंजनों के स्थान पर शून्य और अल्प-प्राण के स्थान पर ह् ही मिलते हैं, केवल टवर्ग सुरक्षित मिलाता है, (२) मध्यवर्ती स भी प्रायः ह में परिणत मिलता है। जैसे पाषाण>पाहाण, (३) अघोष अल्पप्राण कभी-कभी महाप्राणित हो जाता है। जैसे निकष>ण्हस या भरत>भरह, (४) न के लिए ण एकल स्थिति में भी मिलता है तथा तुमुन् के अर्थ से त्वान से से निकला हुआ तूण और ऊण प्रत्यय मिलता है। सुबन्त प्रक्रिया में अधिकरण एकवचन के लिए स्मिम् के स्थान में म्मि और अपादान एकवचन में अहि मिलता है। विधिलिङ्ग की प्रक्रिया प्रायः अर्धमागधी और महाराष्ट्री के सदृश है, शौरसेनी की प्रक्रिया संस्कृत से उद्भूत है। महाराष्ट्री में कुछ प्राचीन क्रिया रूप की रक्षा भी मिलती है। जैसे कृणोति>कुणइ।

९.२ शौरसेनी की मुख्य विशेषताएँ ये हैं–(१) स्वर मध्यवर्ती दन्त्य स्पर्श इनका केवल घोषीकरण हो जाता है। जैसे कथयतु> कधेतु (२) क्ष>ख होता है जबकि महाराष्ट्री में ख>छ होता है, (३) द्वित्व व्यंजनों का सरलीकरण महाराष्ट्री और अर्धमागधी की अपेक्षा इसमें कम है, (४) इसकी रूप-संघटना संस्कृत के अधिक समीप है जहाँ निदर्शन विधिलिङ् के प्रक्रिया में मिलती है, इसमें

महाराष्ट्री और मागधी में इज्ज प्रत्यय नहीं पाया जाता। उसी प्रकार इज्ज के स्थान पर इसका इस संस्कृत के य से स्वरभक्ति द्वारा साक्षात् उद्भूत है पाया जाता है। पूर्वकालिक क्रिया के लिए इसमें त्वा की अपेक्षा इअ रूप जो ल्यप् से उद्भूत है अधिक मिलता है। पंचमी एकवचन में इसके तसिल् और आत् के मिश्रण से आदो प्रत्यय मिलता है।

९.३ **अर्धमागधी**—अर्धमागधी कोशल की भाषा थी। जैन आचार्यों ने इसे आर्षी आदि भाषा माना है। एक प्रकार से यह शौरसेनी और मागधी के बीच की भाषा है इसीलिए इसमें कुछ-कुछ दोनों के लक्षण मिलते हैं। यह जैन सम्प्रदाय की धार्मिक भाषा होने के कारण पालि की भाँति बहुत रूढ हो गयी। इसमें बोली जानेवाली भाषा का सहज रूप प्रायः लुप्त-सा है। संस्कृत-नाटकों में भी इसका प्रयोग जैन साधुओं की भाषा के रूप में हुआ है। इस भाषा से प्रभूत दो विभाषाएँ शौरसेनी और महाराष्ट्री की भी मिलती हैं, जिन्हें भाषाविदों ने क्रमशः जैन शौरसेनी और जैन महाराष्ट्री नाम दिये हैं। उनमें कथासाहित्य विपुल मात्रा में सुरक्षित है, और वे क्रमशः मथुरा और पश्चिमी अंचल के जैन सम्प्रदायों के द्वारा प्रणीत साहित्य में व्यवहृत हुए हैं। अर्धमागधी की अपनी अलग विशेषताएँ ये हैं—(१) इसमें र और ल दोनों ध्वनियाँ विद्यमान हैं और र के लिए ल सार्वत्रिक न होते हुए भी प्रचुर है। (२) इसमें स्वर मध्यवर्ती अघोष ध्वनियों के स्थान पर य श्रुति सार्वत्रिक है। जैसे सागर>सायर, कृत>कय, इसमें कहीं-कहीं स्वर मध्यवर्ती घोष ध्वनियाँ सुरक्षित भी हैं। जैसे लोकस्मिन्>लोगंसि (३) इसमें अन्य प्राकृतों की अपेक्षा मूर्धन्यीकरण की प्रवृत्ति बहुत अधिक हैं (४) इसमें शौरसेनी की ही भाँति तीन ऊष्मों की भाँति केवल स है श नहीं। (५) स्स इसमें प्रायः स में ह्रसित हो जाता है और इसके पूर्व का ह्रस्व

स्वर दीर्घता प्राप्त कर लेता है। जैसे वर्ष>वस्स>वास, इसमें स्स का व्यत्यय होकर मूस हो जाता है, (६) इसमें अकारान्त प्रातिपादिक से प्रथमा एकवचन में ए और ओ दोनों में अन्त होनेवाले रूप मिलते हैं। प्रायः नपुंसक लिंग प्रातिपादिक भी ये रूप ग्रहण कर लेते हैं, (७) पूर्वकालिक क्रिया के लिए इसका त्वा और त्य प्रत्यय त्ता और च्चा के रूप में सुरक्षित है। कहीं-कहीं इसी अर्थ में तुमुन् से उद्भूत दुम् या उम् का ही प्रयोग मिलता है। वाक्य रचना की दृष्टि से इसमें लम्बे वाक्य तथा गर्भ वाक्य बहुत अधिक मिलते हैं, साथ ही क्रिया से असम्बद्ध कारक भी अधिक मात्रा में मिलते हैं।

९.४ **मागधी**—संस्कृत-नाटकों में मागधी अधम पात्रों द्वारा प्रयोजित भाषा के रूप में निर्दिष्ट मिलती है। इसमें दन्त्य ध्वनियों की सुरक्षा एवं त्य प्रत्यय की बहुलता शौरसेनी से सामीप्य परिलक्षित होता है। इसकी अपनी अलग विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(१) र>ल तथा तीनो ऊष्मों के लिए श। जैसे राजा> लाजा और सुन्दरः>शुन्दले। (२) इसमें तालव्य अनुनासिक में व्यंजन का समीकरण हो जाता है। जैसे कन्यका>कञ्ञगा, पुण्य>पुञ्ञ (३) इसमें प्रायः ज और झ के लिए य और ह मिलते हैं और इनके उच्चारण संघृष्ट जैसे हैं। (४) इसमें च स्पष्ट तालव्य ध्वनि और कभी-कभी इसीलिए श्च या च्य के रूप में लिखा मिलता है। (५) अकारान्त प्रातिपदिक से प्रथमा एकवचन में एकारान्त रूप ही मिलता है, (६) अकारान्त प्रातिपादिक से षष्ठी एकवचन में आस से उद्भूत आह प्रत्यय मिलता है। जैसे चारुदत्तस्य>चालुदत्ताह, सप्तमी एकवचन का प्रत्यय आहि है। स्वार्थिक प्रत्यय क का प्रयोग बहुल है। सुबन्त प्रत्ययों का लोप भी बहुत है। इसकी चाण्डाली, शाबरी और शाकारी तीनों

विभाषाओं का उल्लेख प्राकृत वैयाकरणों ने किया है। चाण्डाली की मुख्य विशेषता ग्राम्य एवं अशिष्ट शब्दों का प्रयोग है और शाबरी की विशेषता सम्बोधन के अर्थ में लगा हुआ क प्रत्यय है। शाकारी या शकारी का प्रयोग मृच्छकटिक नाटक में खलनायक के लिए हुआ है।

९.५ **पैशाची**—पैशाची के प्रयोग के उदाहरण, जैसा पहले कहा जा चुका है, बहुत ही विरल हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पैशाची का सामीप्य पश्चिमोत्तर भाषा से था लेकिन इसकी कुछ विभाषाएँ मध्य देश में भी बोली जाती थीं। प्राकृत वैयाकरणों के अनुसार इसकी दो मुख्य विशेषताएँ हैं—(१) स्वर मध्यवर्ती घोष स्पर्शों का अघोषीकरण और (२) स्वर मध्यवर्ती स्पर्शों का लोप न होना। हेमचन्द्र ने प्राचीन भाषा का नाम चूलिका पैशाची दिया है। दूसरे वैयाकरणों ने पैशाची की तीन विभाषाएँ मानी हैं—कैकय, शौरसेन और पांचाल। कैकय संस्कृत और शौरसेनी का मिश्रित रूप है, शौरसेनी पैशाची की मुख्य विशेषताएँ ये हैं—(१) र के लिए ल (२) ष और स के लिए श (३) क्ष के लिए श्क (४) छ के लिए श्च (५) स्थ के लिए श्त (६) अनुनासिक प्रातिपदिक से प्रथमा एकवचन के प्रत्यय का लोप। पांचाल पैशाची, शौरसेनी पैशाची से अत्यन्त स्वल्प भेद रखती है।

९.६ इन साहित्यक प्राकृतों के उदाहरण पहली शताब्दी ईसा से लेकर १३वीं, १४वीं शताब्दी तक की रचनाओं में मिलते हैं। महाराष्ट्री प्राकृत में काव्य-रचना सातवाहन राजाओं के संरक्षण में पहली शताब्दी से चौथी शताब्दी तक होती रही है। बाद में प्राकृत भाषाओं को संरक्षण अन्हिलवाड़ा के चालुक्यों के यहाँ १०-१२ शताब्दी तक मिला है। संस्कृत-नाटक में प्रयुक्त प्राकृतों में एकरूपता न होने के कारण पाठ-शुद्धि की ओर निरन्तर अनवधानता ही रही है।

१०

अपभ्रंश

१०.० अपभ्रंश शब्द का सबसे पहला प्रयोग पतंजलि ने अपशब्द के अर्थ में किया है। उनकी दृष्टि में जो पाणिनीय के अनुसार असाधु शब्द हैं, वे ही अपभ्रंश माने जाने चाहिए। ईसा की छठीं शताब्दी में चण्ड ने प्राकृत लक्षण नामक काव्य में अपभ्रंश का प्रयोग के रूप में किया है। आचार्य भामह ने काव्यालंकार ग्रन्थ में संस्कृत एवं प्राकृतों के साथ अपभ्रंश को भी रखा है। ईसा की नवीं शताब्दी में अपभ्रंश के अनेक भेद बतलाये गये हैं। ईसा की ११वीं शती में पुरुषोत्तम ने अपभ्रंश को शिष्ट भाषा माना है और उन्होंने उसकी तीन मुख्य विभाषाओं के अनेक उदाहरण दिये—नागर, व्राचड और उपनागर। नागर मुख्य और सामान्य साहित्यिक भाषा थी, व्राचड प्राच्य भाषा थी और उपनागर इन दोनों के बीच की। इसके अलावा अपभ्रंश की वैदर्भी, लाटी, लट्टी, कैकेयी और गौड़ी तथा अन्य शैलियों के भी नाम गिनाये हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में आभीरोक्ति के रूप में अपभ्रंश के प्राचीन उदाहरण मिले हैं और उनको उकारबहुल बताया गया है। लगता यह है कि भरत के समय तक तीसरी चौथी शताब्दी में उत्तर-पश्चिम में अपभ्रंश की विशेषताएँ अधिक विकसित थीं। इसकी पुष्टि निय प्राकृत की उकार-बहुलता से होती है। अपभ्रंश का जो साहित्य आज उपलब्ध है, उसकी रचना स्थान भी राजस्थान गुजरात, पश्चिमोत्तर भारत और बुन्देलखंड तक पश्चिम में बंगाल मिथिलापूर्व में दक्षिण में मान्य-

खेट तक विस्तृत है। १७वीं शती में मार्कण्डेय ने अपभ्रंश की २७ विभाषाएँ बतायीं। एक बात स्पष्ट है कि अपभ्रंश का सबसे अधिक विकास उत्तर पश्चिम में हुआ और यहीं की भाषा साहित्यिक अपभ्रंश बनी। आभीरों के साथ इसका सम्बन्ध भी यह है स्पष्ट करता है। छठीं शताब्दी से इनके बोले जानेवाले रूप का विकास इस प्रकार तीसरी चौथी शताब्दी से प्रारम्भ होकर नवीं शताब्दी तक और इसके साहित्यिक रूप का विकास नवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर १४वीं-१५वीं शताब्दी तक हुआ है। अपभ्रंश के बोला जानेवाला रूप के उदाहरण साहित्य शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में तथा हेमचन्द्र के व्याकरण में तथा अनेक सूक्ति संग्रहों में मिलता है। उसके साहित्यिक रूप के उदाहरण सन्देह रासक (१२वीं शताब्दी), प्राकृत पैङ्गल एवं पुरातन प्रबन्ध संग्रह में (उत्तर पश्चिमी भाषा का) उक्तिव्यक्ति प्रकरण, कथाकोष एवं धूर्ताख्यानं में (कोशल की भाषा) तथा वर्ण रत्नाकर, कीर्तिलता एवं चर्यापदों में प्राच्य भाषा के उदाहरण मिलते हैं।

१०.१ अपभ्रंश की मूल विशेषताएँ ये हैं—(१) अन्त्य स्वरों का ह्रास और कहीं-कहीं लोप भी। (२) उपान्त्य स्वरों की मात्रा की रक्षा, (३) ऋ का पुनर्ग्रहण क्षतिपूर्ति के रूप में सानुनासिकता और निरनुनासिकता की प्रवृत्ति बहुत अधिक विकसित हो गयी है। जैसे पक्षिन् > पंखि, वक्र > वंक और सिंह > सीह, विंशति > वीस (४) व या य के लिए उ और इ (५) उपधा स्वर की सुरक्षा। जैसे गोरोचन > गोरोवण। कहीं-कहीं इसमें मात्रा परिवर्तन जरूर हो गया है स्वरूप > सरुअ। स्वराघात के प्रभाव के कारण उपधा स्वर में गुणात्मक परिवर्तन भी हुए हैं। जैसे खदिर > खयर, मध्यम > मज्झिव, उत्तम > उत्तिम। कहीं-कहीं अन्त्याक्षर में व्यंजन के लुप्त हो जाने पर उपधा और दन्त्य स्वर का प्रश्लेष भी हो गया है जैसे पानीय > पाणी। (६) आदि

व्यंजन का महाप्राणीकरण या संघर्षीकरण। जैसे कीलक> खिहिलयइं, ज्वलन> झलण, यमल> जमल स्वरमध्यवर्ती म के लिए वँ जैसे कमल > कवँल, पर यह सार्वत्रिक नहीं है। संयुक्ताक्षरों में र के साथ संयुक्ताक्षरों के पुनर्ग्रहण की प्रवृत्ति पायी जाती है। जैसे प्रिय> प्रिय। कहीं-कहीं र का आगम भी नये रूप में दृष्टिगोचर होता है। जैसे पश्यति> प्रस्सति, व्यास> ब्रास (७) ड द न र के लिए र या ल जैसे प्रदीप्त> पलित्त (प्राच्य भाषा में) जैसे नवतीत> लोंण (८) रूप संगठना में अपभ्रंश में सबसे अधिक परिवर्तन हुए। परिवर्तन के मुख्य दिशाएँ ये थीं— (१) सुबन्त प्रक्रिया बिलकुल नयी हो गयी और अब केवल तीन ही कारक समूह अपभ्रंश में उपलब्ध हैं—(१) कर्ता, कर्म और सम्बोधन के लिए एक रूप (२) करण, अधिकरण के लिए एक रूप (३) सम्प्रदान, सम्बन्ध और अपादान के लिए एक रूप। पहले वर्ग के लिए उ, ए, या ओ दूसरे वर्ग के लिए इ, इँ, ए, एँ, अहि, एहि, एँहि, इण, एण विभक्तियों का प्रयोग हुआ है और तृतीय वर्ग के लिए ह, हे, हु, हो रूप मिलता है। वैसे विभक्ति-लोप की प्रवृत्ति भी बहुत अधिक दिखलायी पड़ने लगी है। परसर्गों का प्रयोग इसी से अधिक विकसित हुआ। करण के अर्थ में सहुँ एवं तण का प्रयोग, सम्प्रदान के अर्थ में केहि और रेसि का प्रयोग, अपादान के अर्थ में होन्तउँ और होन्त का प्रयोग, सम्बन्ध के अर्थ में केरअ केर एवं केरा तथा अधिकरण के अर्थ में मज्झि, मज्झे एवं थिय का प्रयोग बहुलता से मिलने लगा है। सर्वनामों की रूप प्रक्रिया अत्यधिक परिवर्तित है। अदस् के लिए अपभ्रंश में ओइ और एतद् के लिए एह, युष्मत के लिए तुह ये नये प्रातिपदिक हैं, (१) धातु रूप प्रक्रिया में सरलीकरण की प्रवृत्ति और आगे बढ़ गयी। धातु का रूप केवल भ्वादिगण पर ही आधृत हो गया। अनुरणनात्मक और नाम धातुओं का प्रयोग और भी

अधिक बढ़ गया। तिङन्त के स्थान पर कृदन्त रूप का व्यवहार प्राकृत की अपेक्षा ही बढ़ गया और तिङन्त रूप केवल वर्तमान और भविष्यत् तक ही सीमित रह गया। अच्छामि अहइ जैसी सहायक क्रियाओं के रूप स्वीकृत हो गये। पूर्वकालिक क्रिया के लिए इ, यु, ई, अवि, एव्वि, एप्पिणु, एवि, एविणु ये अनेक प्रत्यय अपनाए गए। (३) नपुंसक लिंग पुलिंग और कहीं-कही स्त्री-लिंग में विलीन होने लगे हैं। (४) छन्द की भाषा में अन्त्यानुप्रास नियम के रूप में स्वीकृत हो गया है। स्वार्थिक प्रत्यय के रूप में डी, डा और उल्ल बहुलता से प्रयुक्त हुए हैं। (५) प्राचीन धातुओं के स्थान पर नवीन धातु रूप स्वीकृत हो गया, जैसे वद् > बोल्ल, मुच के > मेल्ल। (६) अपभ्रंश में शब्द समूह की दृष्टि से दो परिवर्तन हुए—(१) एक तो संस्कृत से बहुत से शब्द पुनः लिये गये और (२) दूसरे देशी एवं विशेष भाषाओं से शब्द लिये गये। व्याकरण संस्कृत से नये लिये गये वर्ण संघटनाओं की संख्या प्राकृत के विकास क्रम में न होकर नयी है। (७) आधुनिक भाषाओं के बहुत-से मुहावरों का जन्म इसी काल में हुआ। एक तरहसे आधुनिक भाषाओं का विकास विन्यास अपभ्रंश में वाक्य विन्यास पर ही आधारित है, अपभ्रंश काल में वाक्य में पदों का क्रम भी महत्त्व रखने लगा। यह प्रवृत्ति विभक्ति-लोप का सहज परिणाम थी। अपभ्रंश का महत्त्व इसी-लिए एक संक्रान्तिकालीन भाषा के रूप में बहुत बड़ा है। अपभ्रंश आधुनिक आर्यभाषाओं और मध्य भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है। वह मध्यभारतीय भाषा के विकास का अन्तिम सोपान और आधुनिक आर्यभाषा के विकास का प्रथम अध्याय—दोनों है।

---

1. मायादेविया सुपिनं

तदा किर कपिलवत्थु नगरे आसाळ्हिनक्खत्तं घुट्ठं अहोसि। महाजनो नक्खत्तं कीळेति। महामायादेवी पुरे पुण्णमाय सत्तमदिवसतो पट्ठाय विगतसुरापानं मालागन्धविभूतिसम्पन्नं नक्खत्तकीळं अनुभवमाना सत्तमदिवसे पातो व उट्ठाय गन्धोदकेन नहायित्वा चत्तारि सतसहस्सानि विस्सज्जेत्वा महादानं दत्वा सब्बालंकारविभूसिता वरभोजनं भुञ्जित्वा उपोसथङ्गानि अधिट्ठाय अलंकतपटियत्तं सिरिगब्भं पविसित्वा सिरिसयने निपन्ना निद्दं ओक्कममाना इदं सुपिनं अदस्स—चत्तारो किर नं महाराजानो सयनेनेव सद्धिं उक्खिपित्वा हिमवन्तं नेत्वा सट्ठियोजनिके मनोसिलातले सत्तयोजनिकस्स महासालरुक्खस्स हेट्ठा ठपेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। अथ नेसं देवियो आगन्त्वा देविं अनोतत्तदहं नेत्वा मानुसमलहरणत्थं नहायेत्वा दिब्बवत्थं निवासापेत्वा गन्धेहि विलिम्पापेत्वा दिब्बपुप्फानि पिलन्धापेत्वा—ततो अविदूरे रजतपब्बतो, तस्स अन्तो कनकविमानं अत्थि—तत्थ पाचीनसीसकं दिब्बसयनं पञ्ञापेत्वा निपज्जापेसुं। अथ बोधिसत्तो सेतवरवारणो हुत्वा—ततो अविदूरे एको सुवण्णपब्बतो—तत्थ चरित्वा ततो ओरुय्ह रजतपब्बतं अभिरुहित्वा उत्तरदिसतो आगम्म रजतदामवण्णाय सोण्डाय सेतपदुमं गहेत्वा कोञ्चनादं नदित्वा कनकविमानं पविसित्वा मातुसयनं तिक्खत्तुं पदक्खिणं कत्वा दक्खिणपस्सं ताळेत्वा कुच्छिं पविट्ठसदिसो अहोसि। एवं उत्तरासाळ्हनक्खत्तेन पटिसन्धिं गण्हि। पुनदिवसे पबुद्धा देवी तं

2. गोतमस्स उप्पादो

महामाया देवी पत्तेन तेलं विय दसमासे कुच्छियां बोधिसत्तं परिहरित्वा परिपुण्णगब्भा ञातिवरं गन्तुकामा सुद्धोदन-महाराजस्स आरोचेसि इच्छाम'हं देव कुलसन्तकं देवदहनगरं गन्तु' न्ति। राजा साधू'ति सम्पटिच्छित्वा कपिलवत्थुतो याव देवदहनगरा मग्गं समं कारेत्वा कदलिपुण्णघटधजपताका-दीहि अलंकारापेत्वा देविं सोवण्णसिविकाय निसीदापेत्वा अमच्चसहस्सेन उक्खिपापेत्वा महन्तेन परिवारेन पेसेसि। छिन्नं पन नगरानं अन्तरे उभयनगरवासीनम्पि लुम्बिनीवनं नाम मङ्गलसालवनं अत्थि। तस्मिं समये मूलतो पट्ठाय याव अग्गसाखा सब्बं एकफालिफुल्लं अहोसि, साखन्तरेहि चे'व पुप्फन्तरेहि च पञ्चवण्णभमरगणा नानप्पकारा च सकुनसङ्घा मधुरस्सरेन विकूजन्ता विचरन्ति। सकलं लुम्बिनीवनं चित्तलतावनसदिसं महानुभावस्स रञ्ञो सुसज्जितआपानमण्डलं विय अहोसि। देविया तं दिस्वा सालवनकीळं कीळितुकामता उदपादि। अमच्चा देविं गहेत्वा सालवनं पविसिंसु। सा मङ्गलसालमूलं गन्त्वा साल-साखायं गण्हितुकामा अहोसि। सालसाखा सुसेदितवेत्तग्गं विय ओनमित्वा देविया हत्थपथं उपगञ्छि। सा हत्थं पसारेत्वा साखं अग्गहेसि। तावदेव च'स्सा कम्मजवाता चलिंसु। अथ'स्सा साणिं परिक्खिपित्वा महाजनो पटिक्कमि। सालसाखं गहेत्वा तिट्ठमानाय एव च'स्सा गब्भवुट्ठानं अहोसि। तं खणं येव चत्तारो पि सुद्धचित्ता महाब्रह्मानो सुवण्णजालं आदाय संपत्ता, तेन सुवण्णजालेन बोधिसत्तं संपटिच्छित्वा मातुपुरितो

ठपेत्वा—अत्तमना देवि होहि, महेसक्खो ते पुत्तो उप्पन्नो'ति आहंसु। यथा पन अञ्ञे सत्ता मातुकुच्छितो निक्खमन्ता पटिक्कूलेन असुचिना मक्खिता निक्खमन्ति न एवं बोधिसत्तो। बोधिसत्तो पन धम्मासनतो ओतरन्तो धम्मकथिको विय निस्सेणितो ओतरंतो पुरिसो विय च द्वे च हत्थे द्वे च पादे पसारेत्वा ठितको मातुकुच्छिसंभवेन केनचि असुचिना अमक्खितो सुद्धो विसदो कासिकवत्थे निक्खित्तमणिरतनं विय जोतन्तो मातुकुच्छितो निक्खमि। एवं सन्तेपि बोधिसत्तस्स च बोधिसत्तमातुया च सक्कारत्थं आकासतो द्वे उदकधारा निक्खमित्वा बोधिसत्तस्स च मातु च'स्स सरीरे उतुं गाहापेसुं।

[From Nidāna Kathā Jātaka]

---

3. महाभिनिक्खमनं

तस्मिं समये 'राहुलमाता पुत्तं विजाता'ति सुत्वा सुद्धोदन-महाराजा पुत्तस्स मे तुट्ठिं निवेदेथा'ति सासनं पहिणि। बोधिसत्तो तं सुत्वा 'राहुलो जातो, बन्धनं जातं'ति आह। राजा 'किं मे पुत्तो अवचा'ति पुच्छित्वा तं वचनं सुत्वा 'इतो पट्ठाय मे नत्तु राहुल कुमारो त्वेव नामं होतू'ति। बोधिसत्तो पि खो रथवरं आरुय्ह महन्तेन यसेन अतिमनोरमेन सिरिसोभग्गेन नगरं पाविसि। तस्मिं समये किसागोतमी नाम खत्तिय-कञ्ञा उपरिपासादवरतलगता नगरं पदक्खिणं कुरुमानस्स बोधिसत्तरूपसिरिं दिस्वा पीतिसोमनस्सजाता इमं उदानं उदानेसि—

> निब्बुता नून सा माता, निब्बुतो नून सो पिता।
> निब्बुता नून सा नारी यस्सायं ईदिसो पतीति॥

बोधिसत्तो तं सुत्वा चिन्तेसि—अयं एवं आह एवरूपं अत्तभावं पस्सन्तिया मातुहदयं निब्बायति, पितुहदयं निब्बायति, पजापतिहदयं निब्बायति, कस्मिं नु खो निब्बुते हदयं निब्बुतं नाम होतीति। अथ'स्स किलेसेसु विरत्तमानसस्स एतदहोसि-'रागग्गिम्हि निब्बुते निब्बुतं नाम होति, दोसग्गिम्हि मोहग्गिम्हि निब्बुते निब्बुतं नाम होति, मानदिट्ठिआदिसु सब्बकिलेसदरथेसु निब्बुतेसु निब्बुतं नाम होति, अयं मे सुस्सवनं सावेसि, अहं हि निब्बानं गवेसन्तो चरामि। अज्जे'व मया घरावासं छड्डेत्वा निक्खम्म पब्बजित्वा निब्बानं गवेसितुं वट्टति, अयं इमिस्सा

आचरियभागो होतू'ति कण्ठतो ओमुञ्चित्वा किसागोतमिया सतसहस्सग्घनकं मुत्ताहारं पेसेसि। सा सिद्धत्थकुमारो मयि पटिबद्धचित्तो हुत्वा पण्णाकारं पेसेतीति सोमनस्सजाता अहोसि। बोधिसत्तो पि महन्तेन सिरिसोभग्गेन अत्तनो पासादं अभिरूहित्वा 'सिरिसयने निपज्जि। तावदेव नं सब्बालङ्कारपटिमण्डिता नच्चगीतादिसु सुसिक्खिता देवकञ्ञा विय रूपपत्ता इत्थियो नानातुरियानि गहेत्वा सम्परिवारयित्वा अभिरमापेन्तियो नच्चगीतवादितानि पयोजयिंसु। बोधिसत्तो किलेसेसु विरत्तचित्तताय नच्चादिसु अनभिरतो मुहुत्तं निद्दं ओक्कमि। तापि इत्थियो 'यस्स'त्थाय मयं नच्चादीनि पयोजयाम सो निद्दं उपगतो, इदानिं किमत्थं किलमामा'ति गहितगहितानि तुरियानि अज्झोत्थरित्वा निपज्जिंसु। गन्धतेलप्पदीपा झायन्ति। बोधिसत्तो पबुज्झित्वा सयनपिट्ठे पल्लङ्केन निसिन्नो अद्दस ता इत्थियो तुरियभण्डानि अवत्थरित्वा निद्दायन्तियो एकच्चा पग्घरितखेळा लालाकिलिन्नगता एकच्चा दन्ते खादन्तियो एकच्चा काकच्छन्तियो एकच्चा विप्पलपन्तियो एकच्चा विवटमुखा एकच्चा अपगतवत्था पकटबीभच्छसंबाधट्ठाना। सो तासं तं विप्पकारं दिस्वा भिय्योसोमत्ताय कामेसु विरत्तो अहोसि। तस्स अलंकतपटियत्तं सक्कभवनसदिसं पि तं महातलं विप्पविद्धनानाकुणपभरितं आमकसुसानं विय उपट्ठासि। तयो भवा आदित्तगेहसदिसा विय खायिंसु 'उपद्दुतं वत भो, उपस्सट्ठं वत भो'ति उदानं पवत्ति। अतिविय पब्बज्जाय चित्तं नामि। सो 'अज्जे'व मया महाभिनिक्खमनं निक्खमितुं वट्टतीति सयना उट्ठाय द्वारसमीपं गन्त्वा को एत्था 'ति आह। उम्मारे सीसं कत्वा निपन्नो छन्नो अहं अय्यपुत्त छन्नो 'ति आह। अहं अज्ज महाभिनिक्खमनं निक्खमितुकामो, एकं मे अस्सं कप्पेहीति। सो साधु देवा 'ति अस्सभण्डकं गहेत्वा अस्ससालं गंत्वा गन्धतेलप्पदीपेसु जलन्तेसु सुमनपट्टवितानस्स हेट्ठा रमणीये भूमिभागे

ठितं कन्थकं अस्सराजानं दिस्वा अज्ज मया इमं एव कप्पेतुं वट्टतीति कन्थकं कप्पेसि। सो कप्पियमानो व अञ्ञासि अयं कप्पना अतिगाळ्हा अञ्ञेसु दिवसेसु उय्यानकीळादिगमने कप्पना विय न होति, मय्हं अय्यपुत्तो महाभिनिक्खमनं निक्खमितुकामो भविस्सतीति, ततो तुट्ठमानसो महाहसितं हसि। सो सद्दो सकलनगरं पत्थरित्वा गच्छेय्य, देवता पन तं सद्दं निरुम्भित्वा न कस्सचि सोतुं अदंसु। बोधिसत्तो पि खो छन्नं पेसेत्वा व पुत्तं ताव पस्सिस्सामीति चिन्तेत्वा निसिन्नपल्लंकतो वुट्ठाय राहुल-मातायं वसनट्ठानं गन्त्वा गब्भद्वारं विवरि। तस्मिं खणे अन्तोगब्भे गन्धतेलप्पदीपो झायति। राहुलमाता सुमनमल्लिकादीनं पुप्फानं अम्मणमत्तेन अभिप्पकिण्णसयने पुत्तस्स मत्थके हत्थं ठपेत्वा नि-द्दायति। बोधिसत्तो उम्मारे पादं ठपेत्वा ठितको व ओलोकेत्वा सचा 'हं देविया हत्थं अपनेत्वा मम पुत्तं गण्हिस्सामि देवी पबुज्झिस्सति, एवं मे गमनन्तरायो भविस्सति, बुद्धो हुत्वा व आगन्त्वा पस्सिस्सामीति पासादतलतो ओतरि।

[From Nidāna Kathā Jātaka]

4. महापरिनिब्बानं

अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—सिया खो पना'नंद तुम्हाकं एवं अस्स—'अतीतसत्थुकं पावचनं, न'त्थिनो सत्था' ति, न खो पने' तं आनन्द एवं दट्ठब्बं, यो वो आनन्द मया धम्मो च विनयो आनन्द मया वो देसितो पञ्ञत्तो सो वो मम' च्चयेन सत्था। यथा खो पना' नन्द एतरहि भिक्खू अञ्ञमञ्ञं आवुसोवादेन समुदाचरन्ति न वो मम'च्चयेन एवं समुदाचरितब्बं, थेरतरेन आनन्द भिक्खुना नवकतरो भिक्खु नामेन वा गोत्तेन वा आवुसोवादेन वा समुदाचरितब्बो नवकतरेन भिक्खुना थेरतरो भिक्खु भन्ते ति वा आयस्मा ति वा समुदाचरितब्बो आकंखमानो आनन्द सङ्घो मम' येन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहन्तु। छन्नस्स आनन्द भिक्खुनो मम'च्चयेन ब्रह्मदण्डो कातब्बो'ति। कतमो पन भन्ते ब्रह्मदण्डो' ति। छन्नो आनन्द भिक्खु यं इच्छेय्य तं वदेय्य, सो भिक्खूहि ने' व वत्तब्बो, न ओवदितब्बो न अनुसासितब्बो' ति। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—सिया खो पन भिक्खवे एकभिक्खुस्सु पि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा, पुच्छथ भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ—सम्मुखीभूतो नो सत्था अहोसि। न मयं सक्खिम्ह भगवन्तं सम्मुखा पटिपुच्छितुं ति। एवं वुत्ते ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। दुतियम्पि··ततियम्पि खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि·· ततियम्पि खो ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि–सिया खो पन भिक्खवे सत्थुगारवेनापि न पुच्छेय्याथ,

सहायको पि भिक्खवे सहायकस्स आरोचेतू' ति। एवं वुत्ते ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एत-दवोच—अच्छरियं भन्ते, अब्भुतं भन्ते, एवं पसन्नो अहं भन्ते—इमस्मिं भिक्खुसङ्घे न' त्थि एकभिक्खुस्स पि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा' ति। पसादा खो त्वं आनन्द वदेसि, ञाणं एव हे' त्थ आनन्द तथा-गतस्स, न' त्थि इमस्मिं भिक्खुसङ्घे एकभिक्खुस्स पि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा' ति। न' त्थि इमस्मिं भिक्खुसङ्घे एकभिक्खुस्स पि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा, इमेसं हि आनन्द पञ्चन्नं भिक्खुसतानं यो पच्छिमको भिक्खु सो सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो संबोधिपरायनो' ति। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—हन्द दानि भिक्खवे आमन्त-यामि वो—वयधम्मा संखारा, अप्पमादेन सम्पादेथा' ति, अयं तथागतस्स पच्छिमा वाचा। अथ खो भगवा पठमज्झानं समा-पज्जि पठमज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियज्झानं...ततियज्झानं...चतुत्थ-ज्झानं समापज्जि, चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा आकासानञ्चायतनं समापज्जि, आकासानञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा विञ्ञाण-ञ्चायतनं समापज्जि, विञ्ञाणञ्चायतनासमापत्तिया वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि, आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठ-हित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि, नेवसञ्ञानासञ्ञा-यतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जि। अथ खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोच—परिनिब्बुतो भन्ते अनुरुद्ध भगवा' ति। न आवुसो आनन्द भगवा परिनिब्बुतो, सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नो' ति। अथ खो भगवा सञ्ञावेदयितनिरोधसमापत्तिया वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानास-ञ्ञायतनं...आकिञ्चञ्ञायतनं...विञ्ञाणञ्चायतनं...आकासनञ्च-

यतनं···चतुत्थज्झानं····ततियज्झानं····दुतियज्झानं···पठमज्झानं समापज्जि, पठमज्झाना वुट्ठिहित्वा दुतियज्झानं···ततियज्झानं··· चतुत्थज्झानं समापज्जि, चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा समनन्तरा भगवा परिनिब्बायि। परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना महाभूमि-चालो अहोसि भिंसनको लोमहंसो, देवदुन्दुभियो च फलिंसु। परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना ब्रह्मा सहंपति इमं गाथं अभासि—

सब्बे व निक्खिपिस्सन्ति भूता लोके समुस्सयं,
यथा एतादिसो सत्था लोके अप्पटिपुग्गलो.
तथागतो बलप्पत्तो सम्बुद्धो परिनिब्बुतो ति ॥

परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना सक्को देवानं इन्दो इमं गाथं अभासि—

अनिच्चा वत संखारा उप्पादवयधम्मिनो,
उप्पज्जितवा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो ति ॥

परिनिब्बुते भगवति सहपरिनिब्बाना आयस्मा अनुरुद्धो इमा गाथायो अभासि—

नाहु अस्सासपस्सासो ठितचित्तस्य तादिनो
अनेजो सन्तिमारब्भ यं कालं अकरी मुनी।
असल्लीनेन चित्तेन वेदनं अज्झवासयि,
पज्जोतस्से'व निब्बानं विमोखो चेतसो अहू' ति।

परिनिब्बुते भगवति सहपरिनिब्बाना आयस्मा आनन्दो इमं गाथं अभासि—

तदासि यं भिंसनकं तदासि लोमहंसनं
सब्बाकारवरूपेते सम्बुद्धे परिनिब्बुते ति।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ॥

[From Mahāparinibbāna Sutta]

5. समावत्तना

सद्धिविहारिकेन भिक्खवे उपज्झायम्हि सम्मावत्तितब्बं, तत्रायं सम्भावत्तना—कालस्से'व उट्ठाय उपाहना ओमुञ्चित्वा एकंसं उत्तरासंगं करित्त्वा दन्तकट्ठं दातब्बं, मुखोदकं दातब्बं, आसनं पञ्ञापेतब्बं। सचे यागु होति भाजनं धोवित्वा यागु उपनामेतब्बा। यागुं पितस्स उदकं दत्वा भाजनं पटिगहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अपरिघंसंतेन धोबित्वा पटिसामेतब्बं। उपज्झायम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं। सचे सो देसो उक्लापो होति सो देसो सम्मज्जितब्बो। सचे उपज्झायो गामं पविसितुकामो होति निवासनं दातब्बं, पटिनिबासनं पटिग्गहेतब्बं, कायबन्धनं दातब्बं, सगुणं कत्वा संघाटियो दातब्ब, धोबित्वा पत्तो सउदको दातब्बो। स चे उपज्झायो पच्छा समणं आकंखति तिमंडलं पटिच्छादेन्तेन परिमण्डलं निवासेत्वा, कायबन्धनं बन्धित्वा, सगुणं कत्वा संघाटियो, पारुपित्वा गण्ठिकं पटिमुञ्चित्वा, धोबित्वा पत्तं गहेत्वा उपज्झायस्स पच्छासमेणन होतब्बं। नातिदूरे गन्तब्बं, न अच्चासन्ने गन्तब्बं, पत्तपरिया पन्नं पटिग्गहेतब्बं। न उपज्झायस्स भणमानस्स अन्तरन्तरा कथा ओपातेतेब्बा, उपज्झायो आपत्तिसामन्ता भणमानो निवारेतब्बो। निवत्तन्तेन पठमतरं आगन्त्वा आसनं पञ्ञापेतब्बं पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं परिग्गहेतब्बं। सच्चे चीवरं सिन्नं होति मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बं, न च उण्हे चीवरं निदहितब्बं। चीवरं संहरितब्बं चीवरं संहरन्तेन चतुरंगुलं, कण्णं उस्सारेत्वा चीवरं संहरितब्बं, मा मज्झे भंगो अहोसीति,

ओभोगे कायबन्धनं कातब्बं। सचे पिण्डपातो होति उपज्झायो च भुंजितुकामो होति उदकं दत्वा पिण्डपातो उपनामेतब्बो। उपज्झायो पानियेन पुच्छितब्बो, भुत्ताविस्स उदकं दत्वा पत्तं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अपरिघंसंतेन धोवित्वा वोदकं कत्वा मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बो, न च उण्हे पत्तो निदहितब्बो। पत्तचीवरं निक्खिपितब्बं, पत्तं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन पत्तं गहेत्वा एकेन हत्थेन हेट्ठामञ्चं वा हेट्ठापीठं वा परामसित्वा पत्तो निक्खिपितब्बो, न च अनन्तरहिताय भूमिया पत्तो निक्खिपितब्बो। चीवरं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन चीवरं गहेत्वा एकेन हत्थेन चीवरवंसं वा चीवररज्जुं व पमज्जित्वा पारतो अन्तं ओरतो भोगं कत्वा चीवरं निक्खिपितब्बं। उपज्झायम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं पटिसामतब्बं, सचे सो देसो उक्लापो होति सो देसो संमज्जितब्बो। सचे उपज्झायो नहायितुकामो होति नहानं पटियादेतब्बं, सचे सीतेन अत्थो होति सीतं पटियादेतब्बं, सचे उण्हेन अत्थो होति उण्हं पटियादेतब्बं। सचे उपज्झायो जन्ताघरं पविसितुकामो होति चुण्णं सन्नेतब्बं, मत्तिका तेमेतब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय उपज्झायस्स पिट्ठितो पिट्ठितो गंत्वा जन्ताघरपीठं दत्वा चीवरं पटिग्गहेत्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं, चुण्णं दातब्बं, मत्तिका दातब्बा। सचे उस्सहति जन्ताघरं पविसितब्बं, जन्ताघरं पविसन्तेन मत्तिकाय मुखं मक्खेत्वा पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरं पविसितब्बं।

न थेरे भिक्खू अनुपखज्ज निसीदितब्बं, न नवा भिक्खू आसनेन पटिवाहेतब्बा। जन्ताघरे उपज्झायस्स परिकम्मं कातब्बं, जन्ताघरा निक्खमन्तेन जन्ताघरपीठं आदाय पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरा निक्खमितब्बं। उदकेपि उपज्झायस्स परिकम्मं कातब्बं, नहातेन पठमतरं उत्तरित्वा अत्तनो गत्तं वोदकं कत्वा निवासेत्वा उपज्झायस्स गत्ततो उदकं पमज्जितब्बं, निवासनं

दातब्बं, संघाटि दातब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय पठमतरं आगन्त्वा आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं, उपज्झायो पानियेन पुच्छितब्बो। सचे उद्दिसापेतुकामो होति उद्दिसापेतब्बो, सचे परिपुच्छितुकामो होति, परिपुच्छितब्बो। यस्मिं विहारे उपज्झायो विहरति सचे सो विहारो उक्लापो होति सचे उस्सहति सोधेतब्बो, विहारं सोधेन्तेन पठमं पत्तचीवरं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं, निसीदनपच्चत्थरणं नीहारित्वा एक मन्तं निक्खिपितब्बं। मञ्चो नीचं कत्वा साधुकं अपरिघंसन्तेन असंघट्टन्तेन कवाटपिट्ठं नीहरित्वा एकमंतं निक्खिपितब्बो। पीठं नीचं कत्वा साधुकं अपरिघंसन्तेन असंघट्टन्तेन कवाटपिट्ठं नीहारित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। मञ्चपाटिपादका नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बो, खेळमल्लको नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बो, अपस्सेनफलकं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं, भुम्मत्थरणं यथापञ्ञत्तं सल्लक्खेत्वा नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। सचे विहारे सन्तानकं होति उल्लोका पठमं ओहारेतब्बं आलोकसन्धिकण्णभागा पमज्जितब्बा। सचे गेरुकपरिकम्मकता भित्ति कण्णकिता होति चोळकं तेमेत्वा पीळेत्वा, पमज्जितब्बा सचे काळवण्णकता भूमि कण्णकिता होति चोळकं तेमेत्वा पीळेत्वा पमज्जितब्बा, सचे अकता होति भूमि उदकेन परिप्फोसित्वा सम्मज्जितब्बा, मा विहारो रजेन ऊहञ्ञीति। संकारं विचिनित्वा एकमन्तं छड्डेतब्बं।

[From Vinaya Pitaka]

---

6. सम्मादिट्ठी

सावत्थियं विहरति। अथखो आयस्मा कच्चायनगोत्तो येन भगवा तेनु'पसंकमि, उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा कच्चायनगोत्तो भगवन्तं एतदवोच—सम्मादिट्ठि सम्मादिट्ठीति भन्ते वुच्चति, कित्तावता नु खो भन्ते सम्मादिट्ठि होतीति। द्वयं निस्सितो खो' यं कच्चायनलोको येभुय्येन—अत्थितञ्चे' व नत्थितञ्च। लोकसमुदयं खो कच्चायन यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो या लोके नत्थिता सा न होति, लोकनिरोधं खो कच्चायन यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो या लोके अत्थिता सा न होति। उपायुपादानाभिनिवेसनिबंधो खो' यं कच्चायन लोको येभुय्येन—तञ्चा' यं 'उपायुपादानं चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसयं न उपेति न उपादियति नाधिट्ठाति 'अत्ता मेति, दुक्खं एव उप्पज्जमानं उप्पज्जति। दुक्खं निरुज्झमानं निरुज्झतीति' न कंखति न विचिकिच्छति, अपरप्पच्चया ञाणं एव' स्स एत्थ होति, एत्तावता खो कच्चायन सम्मादिट्ठि होति। 'सब्बं अत्थीति' खो कच्चायन अयं एको अन्तो, 'सब्बं न' त्थीति' अयं दुतियो अन्तो, एते ते कच्चायन उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन तथागतो धम्मं देसेति—अविज्जापच्चया संखारा, संखारप्पच्चया विञ्ञाणं—पे—एवं एतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति, अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा संखारनिरोधो, संखारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो—पे—एवं एतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होतीति।

[From Sañjsutta Nikāya]

---

7. अनत्तवादो

अथ खो मिलिन्दो राजा येना'यस्मा नागसेनो तेनु'पसंकमि, उपसंकमित्वा आयस्मता नागसेनेन सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। आयस्मा पि खो नागसेनो पटिसम्मोदि, येने'व रञ्ञो मिलिन्दस्स चित्तं आराधेसि। अथ खो मिलिंन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—कथं भदन्तो ञायति किन्नामोसि भन्ते'ति। नागसेनो 'ति खो अहं महाराज ञायामि, नागसेनो 'ति मं महाराज सब्रह्मचारी समुदाचरन्ति, अपि च मातापितरो नामं करोन्ति नागसेनो 'ति वा सूरसेनो 'ति वा वीरसेनो 'ति वा सीहसेनो ति वा, अपि च खो महाराजा संखा समञ्ञा पञ्ञत्तिवोहारो नाममत्तं यदिदं नागसेनो, ति, न हे'त्थ पुग्गलो उपलब्भतीति। अथ खो मिलिन्दो राजा एवं आह—सुणन्तु मे भोन्तो पञ्चसता-योनका असीतिसहस्सा च भिक्खू, अयं नागसेनो एवं आह—'न हे'त्थ पुग्गलो उपलब्भतीति' कल्लं नु खो तद् अभिनन्दितुं ति। अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—सचे भन्ते नागसेन पुग्गलो नू'पलब्भति। को चरहि तुम्हाकं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानपच्चयभेसज्जपरिक्खारं देति, को तं परिभुञ्जति, को सीलं रक्खति, को भावनं अनुयुञ्जति, को मग्गफलनिब्बानानि सच्छिकरोति, को पाणं हनति, को अदिन्नं आदियति, को कामेसु मिच्छा चरति, को मुसा भणति, को मज्जं पिवति, को पञ्चानन्तरियकम्मं करोति। तस्मा न' त्थि कुसलं, न' त्थि अकुसलं, न' त्थि कुसलाकुसलानं कम्मानं कत्ता वा

कारेता वा, न' त्थि सुकटदुक्खटानं कम्मानं फलं विपाको। सचे, भन्ते नागसेन यो तुम्हे मारेति न' त्थि तस्सापि पाणातिपातो, तुम्हाकम्पि भन्ते नागसेन न' त्थि आचरियो न'त्थि उपज्झायो न' त्थि उपसम्पदा। नागसेनो'ति मं महाराजा सब्रह्मचारी समुदाचरन्ती'ति यं वदेसि, कतमो एत्थ नागसेनो, किन्नु खो भन्ते केसा नागसेनो'ति। नहि महाराजा' ति। लोमा नागसेनो' ति। नहि महाराजा' ति। नखा··पे···दन्ता तचो मंसं नहारु अट्ठि अट्ठिमिञ्जा वक्कं हदयं यकनं किलोमकं पिहकं पप्फासं अन्तं अन्तगुणं उदरियं करीसं पित्तं सेम्हं पुब्बो लोहितं सेदो मेदो अस्सु वसा खेळो सिङ्घाणिका लसिका मुत्तं मत्थके मत्थलुङ्गं नागसेनो'ति। नहि महाराजा'ति। किन्नु खो भन्ते रूपं नागसेनो'ति। नहि महाराजा'ति। वेदना·· सञ्ञा··संखारा··विञ्ञाणं नागसेनो'ति। न हि महाराजा' ति। किं पन भन्ते रूपवेदनासञ्जासंखारविञ्ञाणं नागसेनो' ति। न हि महाराजा'ति। किं पन भन्ते अञ्ञत्र रूपवेदनासञ्ञासंखारविञ्ञाणं नागसेनो' ति। न हि महा राजा' ति। 'तं अहं भन्ते पुच्छन्तो पुच्छन्तो न पस्सामि नागसेनं, सद्दो येव नु खो भन्ते नागसेनो, को पने'त्थ नागसेनो, अलिकं त्वं भाससि मुसावादं, न' त्थि नागसेनो' ति। अथ खो आयस्मा नागसेनो मिलिन्दं राजानं एतदवोच—त्वं खो सि महाराज खत्तियसुखुमालो अच्चन्तसुखुमालो, तस्स ते महाराज मज्झन्तिकसमयं तत्ताय भूमिया उण्हाय वालिकाय खरा सक्खरकठलवालिका मद्दित्वा पादेन गच्छन्तस्स पादा रुजन्ति, कायो किलमति, चित्तं उपहञ्ञति दुक्खसहगतं कायविञ्ञाणं उप्पज्जति, किन्नु त्वं पादेना' गतोसि उदाहु वाहनेना' ति। नाहं भन्ते पादेना' गच्छामि रथेनाहं आगतो' स्मीति। स चे त्वं महाराज रथेनागतो सि रथं मे आरोचेहि, किन्नु खो

महाराज ईसा रथो'ति। न हि भन्ते' ति। अक्खो रथो'ति। नहि भन्ते' ति। चक्कानि...रथपञ्जरं...रथदण्डको...युगं... रस्मियो...पतोदलट्ठि रथो' ति। नहि भन्ते' ति। किं नु खो महाराज ईसाअक्खचक्करथपञ्जररथदण्डयुगरस्मिपतोदं रथो' ति। नहि भन्ते'ति न हि भन्ते'ति। तं अहं महाराज पुच्छन्तो पुच्छन्तो न पस्सामि रथं, सद्दो येव नु खो महाराज रथो, को पने'त्थ रथो, अलिकं त्वं महाराज भाससि मुसावादं, न' त्थि रथो, त्वं सि महाराज सकल जम्बुदीपे अग्गराजा, कस्स पन त्वं भायित्वा मुसा भाससि। सुणन्तु मे भोन्तो पञ्चसता योनका असीतिसहस्सा च भिक्खू, अयं मिलिन्दो राजा एवं आह—रथेनाहं आगतो' स्मीति, 'सचे त्वं महाराज रथेना' गतो सि रथं मे आरोचेहीति' वुत्तो समानो रथं न सम्पादेति, कल्लन्नु खो तदभिनन्दितुं' ति। एवं वुत्ते पञ्चसत्ता योनका आयस्मतो नागसेनस्स साधुकारं दत्वा मिलिन्दं राजानं एतदवोचुं—इदानि खो त्वं महाराजा सक्कोन्तो भासस्सू' ति। अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—नाहं भन्ते नागसेन मुसा भणामि, इसञ्च पटिच्च अक्खञ्च पटिच्च चक्कानि च पटिच्च रथपञ्जरञ्च पटिच्च रथदण्डकञ्च पटिच्च रथोति संखा समञ्ञा पञ्ञत्तिवोहारो नामं पवत्ततीति। साधु खो त्वं महाराज रथं जानासि, एवं एव खो महाराज मय्हम्पि केसे च पटिच्च लोमे पटिच्च...पे०...मत्थलुङ्गञ्च पटिच्च रूपञ्च... विञ्ञाणञ्च पटिच्च नागसेनो ति संखा...नाममत्तं पवत्तति, परमत्थतो पने'त्थ पुग्गलो नू' पलब्भति। भासितं पे' तं महाराज वजिराय भिक्खुनिया भगवतो सम्मुखा—

यथा हि अङ्गसम्भारा होति सद्दो रथो इति,
एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तोति सम्मुतीति॥

अच्छरियं भन्ते नागसेन, अब्भुतं भन्ते नागसेन, अतिचित्रानि पञ्हपटिभानानि विस्सज्जितानि, यदि बुद्धो तिट्ठेय्य साधुकारं ददेय्य, साधु साधु नागसेन, अतिचित्रानि पञ्हपटिभानानि विस्सज्जितानि ।

[From Milinda Pañho]

---

8. धम्मपदसंगहो

यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं
पलेति रसं आदाय एवं गामे मुनी चरे।(४९)
न तेन भिक्खु भवति यावता भिक्खते परे
विस्सं धम्मं समादाय भिक्खु होति न तावता। (२६६)
यो' ध पुञ्ञञ्च पापञ्च बाहित्वा ब्रह्मचरियवा
संखाय लोके चरति स वे भिक्खू' ति वुच्चति। (२६७)
न जटाहि न गोत्तेन न जच्चा होति ब्राह्मणो,
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो।(३९३)
किं ते जटाहि दुम्मेध, किं ते अजिनसाटिया,
अब्भन्तरन्ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि। (३९४)
पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसंथतं
एकं वनस्मिं झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं। (३९५)
एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो
वितिण्णपरलोकस्य न' त्थि पापं अकारियं। (१७६)
सुदस्सं वज्जं अञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं,
परेसं हि सो वज्जानि ओपुनाति यथा भुसं,
अत्तनो पन छादेति कलिं व कितवा सठो। (२५२)
अयसा, व मलं समुट्ठितं। तदुट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं। सककम्मानि न यन्ति दुग्गतिं। (२४०)
न हि पापं कतं कम्म सज्जु खीरं व मुच्चति,
डहन्तं बालं अन्वेति भस्माछन्नो व पावको। (७१)
न हि वेरेन वेरानि सम्मन्ती' ध कुदाचनं
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो। (५)

मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं
पियान' दस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं। (२१०)

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका। उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका। अत्तानं दमयन्ति पण्डिता॥ (८०)

सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति
एवं निन्दापसंसेसु न समिञ्जन्ति पण्डिता। (८१)

यथा अगारं सुच्छन्नं वुट्ठि न समतिविज्झति
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति। (१४)

यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं व धारये
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो'तरो जनो। (२२२)

सेय्यो अयोगुळो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो। (३०८)

यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गमे मानुसे जिने
एकञ्च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो। (१०३)

अचिरं वत' यं कायो पठविं अधिसेस्सति
छुद्दो अपेतविञ्ञाणो निरत्थं व कलिङ्गरं। (४१)

परिजिण्णं इदं रूपं रोगनिड्डं पभङ्गुणं,
भिज्जति पूतिसन्देहो मरणन्तं हि जीवितं। (१४८)

दीघा जागरतो रत्ती, दीघं सन्तस्स योजनं,
दीघं बालानं संसारो, सद्धम्मं अविजानतं। (६०)

'सब्बे संखारा अनिच्चा' ति यदा पञ्ञाय पस्सति
अथ निब्बिन्दती दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया। (२७७)

'सब्बे संखारा दुक्खा' ति यदा पञ्ञाय पस्सति
अथ निब्बन्दती दुक्खे,एस मग्गो विसुद्धिया। (२७८)

'सब्बे धम्मा अनत्ता' ति यदा पञ्ञाय पस्सति
अथ निब्बन्दती दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया। (२७९)

यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च संघञ्च सरणं गतो,
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। (१९०)
दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं
अरियञ्च'ट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं। (१९१)
एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं,
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति। (१९२)
दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिं आभाति चन्दिमा,
सन्नद्धो खत्तियो तपति, झायी तपति ब्राह्मणो,
अथ सब्बं अहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा। (३८७)
इध नन्दति पेच्च नन्दति। कतपुञ्ञो, उभयत्थ नन्दति।
'पुञ्ञं मे कतं' ति नन्दति। भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो। (१८)

---

9. लंकाविजयो

सब्बलोकहितं कत्वा पत्वा सन्ति खणं परं।
परिनिब्बानमञ्चम्हि निपन्नो लोकनायको ॥ १ ॥
देवता सन्निपातम्हि महन्तम्हि महामुनि।
सक्कं तत्र समीपट्ठं अवोच वदतं वरं ॥ २ ॥
विजयो लाळविसयो सीहबाहु नरिन्दजो।
एको लंकं अनुप्पत्तो सत्तामच्चसतानुगो ॥ ३ ॥
पतिट्ठिस्सति देविन्द लङ्काय मम सासनं।
तस्मा सपरिवारं तं रक्ख लंकञ्च साधुकम् ॥ ४ ॥
तथागतस्स देविन्दो वचो सुत्वा विसारदो।
देवस्सु'प्पल वण्णस्स लंकारक्खं समप्पयि ॥ ५ ॥
सक्खेन वुत्तमत्तो सो लङ्कं आगम्म सज्जुकं।
परिब्बाजकवेसेन रुक्खमूलं उपाविसि ॥ ६ ॥
विजयप्पमुखा सब्बे तं उपेच्च अपुच्छिसुं।
अयं भो को नु दीपो'ति लङ्कादीपोति अब्रुवि ॥ ७ ॥
न सन्ति मनुजा एत्थ न च हेस्सति वो भयं।
इति वत्वा कुण्डिकायं ते जलेन निसिञ्चिय ॥ ८ ॥
सुत्तं च तेसं हत्थेसु लग्गेत्वा नभसा गमा।
दस्सेसि सोणिरूपेन परिचारिका यक्खिनी ॥ ९ ॥
एको तं वारियन्तोपि राजपुत्तेन अन्वगा।
गामम्हि विज्जमानम्हि भवन्ति सुनखा इति ॥ १० ॥
तेस्सा च सामिनी तत्थ कुवेणी नाम यक्खिनी।
निसीदि रुक्खमूलम्हि कन्तन्ती तापसी विय ॥ ११ ॥

दिस्वान सो पोक्खरिणिं निसिन्नं तं च तापसिं।
तत्थ नहात्वा पिवित्वा चा'दाय च मुळालयो ॥ १२ ॥
वारिञ्च पोक्खरे देव सा उट्ठासि तं अन्नुवि।
भक्खोसि मम तिट्ठाति आळ्हावद्धो व सो नरो ॥ १३ ॥
परित्तमुत्ततेजेन भक्खेतुं सा न सक्कुणि।
वाचियन्तोति तं सुत्तं नादा यक्खिनिया नरो॥ १४ ॥
तं गहेत्वा सुरुङ्गायं रुदन्तं यक्खिनी खिपि।
एवं एकेकसो तत्थ खिपि सत्तसतानि'पि ॥ १५ ॥
अनायत्तेसु सब्बेसु विजयो भयसंकितो।
नद्धपञ्चायुधो गन्त्वा दिस्वा पोक्खरिणिं सुभं ॥ १६ ॥
अपस्सि उत्तिण्णपदं हसन्ति चे'व तापसिं।
इमाय खलु भच्चा मे गहिता नू'ति चिन्तिय ॥ १७ ॥
किन्न पस्ससि भच्चे मे भोति त्वं इति आह तं।
किं राजपुत्त भच्चेहि पिव नहाया' त्याह सा ॥ १८ ॥
यक्खिनी ताव जानाति मम जातिं'ति निच्छितो।
सीघं सनामं सावेत्वा धनुं सन्धायु' पागतो ॥ १९ ॥
यक्खिं आदाय गीवाय नाराचवलयेन सो।
वामहत्थेन केसेसु गहेत्वा दक्खिनेन तु ॥ २० ॥
उक्खिपित्वा असिं आह भच्चे मे देहि दासि तं।
मारेमीति भयट्ठा सा जीवितं वाचि यक्खिनी ॥ २१ ॥
जीवितं देहि मे सामि रज्जं दस्सामि ते अहं।
करिस्सामि'त्थिकिच्चञ्च अञ्ञं किञ्च यथिच्छितं ॥२२॥
अदूभत्थाय सपथं सो तं यक्खिं अकारयि।
आनेहि भच्चे सीघं ति वुत्तमत्ता व सा नयि ॥ २३ ॥
इमे छाता'ति वुत्ता सा तण्डुलादिं विनिद्दिसि।
भक्खितानं वाणिजानं नावट्ठं विविधं बहु ॥ २४ ॥

भच्चा ते साधयित्वान भत्तानि व्यञ्जनानि च ।
राजपुत्तं भोजयित्वा सब्बे चापि अभुञ्जिसुं ॥ २५ ॥
दापितं विजयेनग्गं यक्खी भुञ्जिय पीणिता ।
सोळसवस्सिकं रूपं मापयित्वा मनोहरम् ॥ २६ ॥
राजपुत्तं उपागञ्छि सब्बाभरणभूसिता ।
मापेसि रुक्खमूलस्मिं सयनं च महारहं ॥ २७ ॥
साणिया सुपरिक्खित्तं वितान समलङ्कतं ।
ते दिस्वा राजतनयो पेक्खं अत्थं अनागतम् ॥ २८ ॥
कत्वान ताय संवासं निपज्जि सयने सुखं ।
साणिं परिक्खिपत्वान सब्बे भच्चा निपज्जिसुं ॥ २९ ॥
रत्तिं तुरियसद्दञ्च सुत्वा गीतरवञ्च सो ।
अपुच्छि सहसेमानं किं सद्दो इति यक्खिनी ॥ ३० ॥
रज्जं च सामिनो देय्यं सब्बे यक्खा च घातिया ।
मनुस्सावासकारणा यक्खा मं घातेस्सन्ति हि ॥ ३१ ॥
इति चिन्तिय यक्खी सा अब्रुवि राजनन्दनं ।
सिरीसवत्थु नामेन सामि यक्खपुरं इदं ॥ ३२ ॥
तत्थ जेट्ठस्स यक्खस्स लङ्का नगरवासिनी ।
कुमारिका इधानीता तस्सा माता च आगता ॥ ३३ ॥
आवाहमङ्गले तत्थ इधापि उस्सवो महा ।
वत्तते तत्थ सद्दो महाहेस समागमो ॥ ३४ ॥
अज्जेव यक्खे घातेहि नहि सक्खा इतो परं ।
सो आहादिस्समाने ते घातेस्सामि कथ अहं ॥ ३५ ॥
तत्थ सद्दं करिस्सामि तेन सद्देन घातय ।
आबुधं मा'नुभावेन तेसं काये पतिस्सति ॥ ३६ ॥
तस्सा सुत्वा तथा कत्वा सब्बयक्खे अघातयि ।
सयंपि विजयो लद्धा यक्खराजपसाधनं ॥ ३७ ॥

पसाधनेहि सेसेहि तं तं भच्चं पसाधयि।
कतिपाहं वसित्वे'त्थ तम्बपण्णिं उपागमि॥ ३९॥
मापयित्वा तम्बपण्णिनगरं विजयो तहिं।
वसि यक्खिनिया सद्धिं अमच्चपरिवारितो॥ ४०॥
नावाय भूमिं उत्तिण्णा विजयप्पमुखा तदा।
किलन्ता पाणिना भूमिं आलम्बिय निसीदिसुं॥ ४१॥
तम्बभूमिरजोपुट्ठा तम्बपण्णी यतो अहू।
सो देसो चे'व दीपो च तम्बपण्णी ततो अहू॥ ४२॥
सीहबाहु नरिन्दो सो सीहं आदिण्णवा इति।
सीहलो तेन सम्बन्धा एते सब्बेपि सीहला॥ ४३॥

[From Mahāvamsa]

10. निग्रोधमिगजातको

अतीते बाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारयमाने बोधिसत्तो मिगयोनियं पटिसन्धिं गण्हि । सो मातुकुच्छितो निक्खमन्तो सुवण्णवण्णो अहोसि अक्खीनि च'स्स मणिगुळसदिसानि अहेसुं सिङ्गानि रजतवण्णानि, मुखं रत्तकम्बलपुञ्जवण्णं, हत्थपादपरियन्ता लाखापरिकम्मकता विय, वालधि चमरस्स विय अहोसि, सरीरं पुन'स्स महन्तं अस्सपोतकप्पमाणं अहोसि । सो पञ्चसतमिगपरिवारो अरञ्ञे वासं कप्पेसि नामेन निग्रोधमिगराजा नाम । अविदूरे पन'स्स अञ्ञोपि पञ्चसतमिगपरिवारो साखमिगो नाम वसति सोपि सुवण्णवण्णो, व अहोसि । तेन समयेन बाराणसिराजा मिगवधपसुतो होति, विना मंसेन न भुञ्जति, मनुस्सानं कम्मच्छेदं कत्वा सब्बे नेगमजानपदे सन्निपातेत्वा देवसिकं मिगवं गच्छति । मनुस्सा चिन्तेसुं-अयं राजा अम्हाकं कम्मच्छेदं करोति यन्नून मयं उय्याने मिगानं निवापं वपित्वा पानियं सम्पादेत्वा बहुमिगे उय्याने पवेसेत्वा द्वारं बन्धित्वा निय्यादेमा'ति । ते सब्बे उय्याने निवापतिनं रोपेत्वा उदकं सम्पादेत्वा द्वारं योजापेत्वा नागरे आदाय मुग्गरादिनानावुधहत्था अरञ्ञं पविसित्वा मिगे परियेसमाना मज्झे ठिते मिगे गण्हिस्सामा' ति योजनमत्तं ठानं परिक्खिपित्वा संखिपमाना निग्रोधमिगसाखामिगानं वसनट्ठानं मज्झे कत्वा परिक्खिपिंसु । अथ तं मिगगणं दिस्वा रुक्खगुम्बादयो च भूमिं मुग्गरेहि पहरन्ता मिगगणं गहनट्ठानतो नीहरित्वा असिसत्तिधनुआदीनि आवुधानि उग्गिरित्वा महानादं नदन्ता तं मिगगणं उय्यानं पवेसेत्वा द्वारं

पिधाय राजानं उपसंकमित्वा-देव, निवद्धं मिगवं गच्छन्ता अम्हाकं कम्मं नासेथ, अम्हेहि अरञ्ञतो मिगे आनेत्वा तुम्हाकं उय्यानं पूरितं, इतो पट्ठाय तेसं मंसं खादथा, ति राजानं अपुच्छित्वा पक्कमिंसु। राजा तेसं वचनं सुत्वा उय्यानं गन्त्वा मिगे ओलोकेन्तो द्वे सुवण्णमिगे दिस्वा तेसं अभयं अदासि। ततो पट्ठाय पन कदाचि सामं गन्त्वा एकमिगं विज्झित्वा आनेति, कदाचि'स्स भत्तकारको गन्त्वा विज्झित्वा आहरति। मिगा धनुं दिस्वा'व मरणभयेन तज्जिता पलायन्ति, द्वे तयो पहारे लभित्वा किलमन्ति पि गिलानापि होन्ति मरणं पि पापुणन्ति। मिगगणं तं पवत्तिं बोधिसत्तस्स आरोचेसि। सो साखं पक्कोसापेत्वा आह-सम्म बहू मिगा नस्सन्ति एकंसेन मरितब्बे सति इतो पट्ठाय मा कण्डेन मिगे विज्झन्तु, धम्मगण्डिकट्ठाने मिगानं वारो होतु, एकदिवसं मम परिसाय वारो पापुणातु, एकदिवसं तव परिसाय वारो पापुणातु, वारप्पत्तो मिगो धम्मगण्डिकाय सीसं ठपेत्वा निपज्जतु, एवं सन्ते मिगा वणिता न भविस्सन्तीति। सो साधू'ति सम्पटिच्छि। ततो पट्ठाय वारप्पत्तो'व मिगो गन्त्वा धम्मगण्डिकाय गीवं ठपेत्वा निपज्जति भत्तकारको आगन्त्वा तत्थ निपन्नकं एव गहेत्वा गच्छति। अथेकदिवसं साखमिगस्स परिसाय एकिस्स गब्भिणीमिगिया वारो पापुणि। सा साखं उपसङ्कमित्वा-सामि अहं पि गब्भिणी, पुत्तकं विजायित्वा द्वे जना वारं गमिस्साम, मय्हं वारं अतिक्कमेहीति आह। सो न सक्का तव वारं अञ्ञेसं पापेतुं, त्वं एव तुय्हं पत्तं जानिस्ससि गच्छाही'ति आह। सा तस्स सन्तिका अनुग्गहं अलभमाना बोधिसत्तं उपसङ्कमित्वा तं अत्थं आरोचेसि। सो तस्सा वचनं सुत्वा होतु गच्छ त्वं अहं ते वारं अतिक्कमेस्सामीति सयं गन्त्वा धम्मगण्डिकाय सीसं कत्वा निपज्जि। भत्तकारो तं दिस्वा लद्धाभयो मिगराजा गण्डिकाय निपन्नो किं नु कारणन्ति वेगेन गन्त्वा

रञ्ञो आरोचेसि । राजा तावदेव रथं आरुय्ह महन्तेन परिवारेन आगन्त्वा बोधिसत्तं दिस्वा आह—सम्म मिगराज, ननु मया तुय्हं अभयं दिन्नं, कस्मा त्वं इध निपन्नो 'ति । महाराज, गब्भिणी मिगी आगन्त्वा मम वारं अञ्ञस्स पापेहीति आह, न सक्का खो पन मया एकस्स मरणदुक्खं अञ्ञस्स उपरि पक्खिपितुं, स्वाहं अत्तनो जीवितं तस्सा दत्वा तस्सा सन्तकं मरणं गहेत्वा इध निपन्नो, मा अञ्ञं किञ्चि आसंकित्थ महाराजा 'ति । राजा आह—सामि, सुवण्णवण्णमिगराज, मया तादिसो खन्तिमेत्तानुद्दयसम्पन्नो मनुस्सेसु पि न दिट्ठपुब्बो, तेन ते पसन्नोस्मि, उट्ठेहि तुय्हं च तस्सा च अभयं दम्मी' ति । द्विहि अभये लद्धे सेसा किं करिस्सन्ति, नरिन्दा'ति । अवसेसानं'पि अभयं दम्मि सामी'ति । महाराज, एवं पि उय्याने येव मिगा अभयं लभिस्सन्ति, सेसा किं करिस्सन्तीति । एतेसं पि अभयं दम्मि सामीति । महाराज, मिगा ताव अभयं लभन्तु, अञ्ञे चतुप्पदा द्विजगणा च किं करिस्सन्तीति । एतेसं पि अभयं दम्मि सामीति । महाराज, चतुप्पदा ताव अभयं लभन्तु, द्विजगणा ताव अभयं लभिस्सन्ति उदके वसन्ता मच्छा किं करिसन्तीति। एतेसं पि अभयं दम्मि सामीति । एवं महासत्तो राजानं सब्बसत्तानं अभयं याचित्वा उट्ठाय राजानं पञ्चसु सीलेसु पतिटठापेत्वा धम्मं चर महाराज, मातापितूसु पुत्तधीतासु ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमजानपदेसु धम्मं चरन्तो समं चरन्तो कायस्स भेदा सुगतिं सग्गं लोकं गमिस्ससीति रञ्ञो ओवादं दत्वा मिगगणपरिवुतो अरञ्ञे पाविसि । सापि खो मिगधेनु पुप्फकण्णिकसदिसं पुत्तं विजायि । सो कीळमानो साखमिगस्स सन्तिकं गच्छति । अथ नं माता तस्स सन्तिके गच्छन्तं दिस्वा पुत्त इतो पट्ठाय मा एतस्स सन्तिकं गच्छ निग्रोधस्सेव सन्तिकं गच्छेय्यासीति ओवदन्ती इमं गाथं आह—

निग्रोधं एव सेवेय्य, न साखं उपसेवसे।
निग्रोधस्मिं मतं याञ्ञे साखस्मिं जीवितं ति ॥

ततोपट्ठाय, च पन अभलद्धका मिगा मनुस्सानं सस्सानि खादन्ति। मनुस्सा लद्धाभया इमे मिगा ति पहरितुं वा पलापेतुं वा न विसहन्ति। ते राजाङ्गनें सन्नि- पतित्वा रञ्ञो तं अत्थं आरोचेसुं। राजा मया पसन्नेन निग्रोधमिगवरस्स वरो दिन्नो, अहं रज्जं जहेय्यं न च तं पटिञ्ञं, गच्छथ, न कोचि मम विजिते मिगे पहरितुं लभ- तीति। निग्रोधमिगो तं पवत्तिं सुत्वा मिगगणं सन्निपातेत्वा इतो पट्ठाय परेसं सस्सं खादितुं न लभथा'ति मिगे वारेत्वा मनुस्सानं आरोचापेसि इतो पट्ठाय सस्सकारकमनुस्सा सस्सरक्खनत्थं वतिं मा करोन्तु, खेत्तं पन आविज्झित्वा पण्णसञ्ञं वन्धन्तू ति। ततो पट्ठाय किर खेत्तेसु पण्णबन्धनसञ्ञं अतिक्कमक- कमिगो नाम न, त्थि, अयं किर नेसं बोधिसत्ततो लद्धओवादो। एवं मिगगणं ओवदित्वा बोधिसत्तो यावतायुकं ठत्वा सद्धिं मिगेहि यथाकम्मं गतो। राजापि बोधिसत्तस्स ओवादे ठत्वा पुञ्ञानि कत्वा यथाकम्मं गतो।

---

11. जवसकुणजातको

अतीते बाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो हिमवन्त-पदेसे रुक्खकोट्टकसकुणो हुत्वा निब्बत्ति। अथे'कस्स सीहस्स मंसं खादन्तस्स अट्ठि गले लग्गि, गलो उद्धुमायि, गोचरं गण्हितुं न सक्कोति, खरा वेदना वत्तन्ति। अथ नं स सकुणो, गोचरपसुतो दिस्वा साखाय निलीनो किन्ते दुक्खं ति पुच्छि। सो तं अत्थं आचिक्खि। अहं ते सम्म एतं अट्ठिं अपनेय्यं, भयेन पन ते मुखं पविसितुं न विसहामि, खादेय्यासि पि नं ति। मा भायि सम्म, नाहं तं खादामि जीवितं मे देहीति। 'सो साधू' ति तं पस्सेन निपज्जापेत्वा को जानाति किं पे' स करिस्सतीति चिन्तेत्वा यथामुखं पिदहितुं न सक्कोति तथा तस्स अधरोट्ठे च उत्तरोट्ठे च दण्डकं ठपेत्वा मुखं पविसित्वा अट्ठिकोटिं तुण्डेन पहरि। अट्ठि पतित्वा गतं। सो अट्ठि पातेत्वा सीहस्स मुखतो निक्खमन्तो दण्डकं तुण्डेन पहरित्वा पातेन्तो निक्खमित्वा साखग्गे निलीयि सीहो नीरोगो हुत्वा एकदिवसं बनमहिसं बधित्वा खादति। सकुणो वीमंसिस्सामि नं ति तस्स उपरिभागे साखाय निलीयित्वा तेन सद्धिं सल्लपन्तो पठमं गाथं आह—

> अकरम्हसे ते किच्चं यं बलं अहुवम्हसे।
> मिगराज नमो त्यत्थु अपि किञ्चि लभामसे॥

तं सुत्वा सीहो दुतियं गाथं आह—

> मम लोहितभक्खस्स निच्चं लुद्दानि कुब्बतो।
> दन्तान्तरगतो सन्तो तं बहुं यं हि जीवसीति॥

तं सुत्वा सकुणो इतरा द्वे गाथा अभासि—

अकतञ्ञुं अकत्तारं कतस्स प्पतिकारकं।
यस्मिं कतञ्जुता न'त्थि निरत्था तस्स सेवना॥
यस्स सम्मुखचिण्णेन मित्तधम्मो न लब्भति।
अनुसुय्यं अनक्कोसं सणिकं तम्हा अपक्कमे' ति॥

एवं वत्वा सो सकुणी पक्कामि।

---

12. ससजातको

अतीते बारणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो ससयोनियं निब्बत्तित्वा अरञ्ञे वसति। तस्स पन अरञ्ञस्स एकतो पब्बतपादो एकतो नदी एकतो पच्चन्तगामको। अपरे पि'स्स तयो सहाया अहेसुं मक्कटो सिगालो उद्दो ति। ते चत्तारो पि पण्डिता एकतो वसन्ता अत्तनो अत्तनो गोचरट्ठाने गोचरं गहेत्वा सायण्हसमये एकतो सन्निपतन्ति। ससपण्डितो दानं दातब्बं, सीलं रक्खितब्बं, उपोसथकम्मं कातब्बन्ति तिण्णं जनानं ओवादवसेन धम्मं देसेति। ते तस्स ओवादं सम्पटिच्छित्वा अत्तनो अत्तनो निवेसनगुम्बं पविसित्वा वसन्ति। एवं काले गच्छन्ते एकदिवसं बोधिसत्तो आकासं ओलोकेत्वा चन्दं दिस्वा स्वे उपोसथदिवसो ति ञत्वा इतरो तयो आह—स्वे उपोसथो तुम्हे तयो पि जना सीलं समादियित्वा उपोसथिका होथ, सीले पतिट्ठाय दिण्णदानं महाफले होति, तस्मा याचके सम्पत्ते तुम्हेहि खादितब्बाहारतो दत्वा खादेय्याथा' ति। ते साधू ति सम्पटिच्छित्वा अत्तनो वसनट्ठानेसु वसित्वा पुनदिवसे तेसु उद्दो पातो व गोचरं परियेसिस्सामीति निक्खमित्वा गङ्गातीरं गतो। अथे को सत्तरोहितमच्छे उद्धरित्वा वल्लिया आवुणित्वा नेत्वा गङ्गातीरे वालिकाय पटिच्छादेत्वा मच्छे गण्हन्ते अधो गङ्गं भस्सि। उद्दो मच्छगन्धं घायित्वा वालिकं वियूहित्वा मच्छे दिस्वा नीहरित्वा अत्थि नु खो इमेसं सामिको'ति तिक्खत्तुं घोसेत्वा सामिकं अपस्सन्तो वल्लियं डसित्वा अत्तनो वसनगुम्बे ठपेत्वा वेलायं एव खादिस्सामीति अत्तनो सीलं आवज्जन्तो निपज्जि। सिगालोपि

निक्खमित्वा गोचरं परियेसन्तो एकस्स खेत्तगोपकस्स कुटियं मंससूलानि एकं गोधं एकञ्च दधिवारकं दिस्वा अत्थि नु खो एतस्स सामिको ति तिक्खत्तुं घोसेत्वा सामिकं अदिस्वा दधिवारकस्स उग्गहरज्जुकं गीवाय पवेसेत्वा मंससूले च गोधञ्च मुखेन डसित्वा नेत्वा अत्तनो सयनगुम्बे ठपेत्वा वेलायं एव खादिस्सामीति अत्तनो सीलं आवज्जन्तो निपज्जि। मक्कटो पि वनसण्डं पविसित्वा अम्बपिण्डिं आहरित्वा वसनगुम्बे ठपेत्वा वेलायं एव खादिस्सामीति अत्तनो सीलं आवज्जन्तो निपज्जि। बोधिसत्तो पन वेलायं एव निक्खमित्वा दब्भतिणानि खादिस्सामीति अत्तणो गुम्बे येव निपन्नो चिन्तेसि—मम सन्तिके आगतानं याचकानं तिणानि दातुं न सक्का तिलतण्डुलादयो पि मय्हं न' त्थि, सचे मे सन्तिकं याचको आगच्छिस्सति अत्तनो सरीरमंसं दस्सामीति। तस्स सीलतेजेन सक्कस्स पण्डुकम्बलसिलासनं उण्हाकारं दस्सेसि। सो आवज्जमानो इमं कारणं दिस्वा ससराजं वीमंसिस्सामीति पठमं उद्दस्स वसनट्ठानं गन्त्वा ब्राह्मणवेसेन अट्ठासि, ब्राह्मण, किमत्थं ठितो' सीति वुत्ते पण्डित सचे किञ्चि आहारं लभेय्यं उपोसथिको हुत्वा समणधम्मं करेय्यं ति। सो साधु दस्सामि ते आहारं ति तेन सद्धिं सल्लपन्तो पठमं गाथं आह—

सत्त मे रोहिता मच्छा उदका थलमुब्भता।
इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वसा'ति॥

ब्राह्मणो पातो व ताव होतु, पच्छा जानिस्सामीति सिगालस्स सन्तिकं गतो, तेनापि किमत्थं ठितोसीति वुत्ते तथेवाह। सिगालो साधु दस्सामीति तेन सद्धिं सल्लपन्तो दुतियं गाथं आह—

दुस्सं मे खेत्तपालस्स रत्तिभत्तं अपाभतं।
मंससूला च द्वे गोधा एकञ्च दधिवारकं।
इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वसा'ति॥

ब्राह्मणो पातो व ताव होतु, पच्छा जानिस्सामीति मक्कटस्स सन्तिकं गतो, तेनापि किमत्थं ठितोसीति वुत्ते तथेवाह। मक्कटो साधु दम्मीति तेन सद्धिं सल्लपन्तो ततियं गाथं आह—

अम्बपक्कोदकं सीतं सीतच्छायं मनोरमं।
इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वसा'ति॥

ब्राह्मणो पातो व ताव होतु, पच्छा जानिस्सामीति ससपण्डितस्स सन्निकं गतो, तेनापि किमत्थं ठितोसीति वुत्ते तथेवाह। तं सुत्वा बोधिसत्तो सोमनस्सप्पत्तो ब्राह्मण सुट्ठु ते कतं आहारत्थाय मय सन्तिकं आगच्छन्तेन, अज्जाहं मया अदिन्नपुब्बं दानं दस्सामि, त्वं पन सीलवा पाणातिपातं न करिस्ससि, गच्छ, तात, दारूनि संकड्ढित्वा अङ्गारे कत्वा मय्हं आरोचेहि, अहं अत्तानं परिच्चजित्वा अङ्गारगब्भे पतिस्सामि, मम सरीरे पक्के त्वं मंसं खादित्वा समणधम्मं करेय्यासीति तेन सद्धिं सल्लपन्तो चतुत्थं गाथं आह—

न ससस्स तिला अत्थि न मुग्गा नापि तण्डुला।
इमिना अग्गिना पक्कं ममं भुत्वा वने वसा'ति॥

सक्को तस्स कथं सुत्वा अत्तनो अनुभावेन एकं अङ्गाररासिं मापेत्वा बोधिसत्तस्स आरोचेसि। सो दब्भतिणसयनतो उट्ठाय तत्थ गन्त्वा सचे मे लोमन्तरेसु पाणका अत्थि ते मा मरिंसूति वत्वा तिक्खत्तुं सरीरं विधूनित्वा सकसरीरं दानमुखं दत्वा लङ्घित्वा पदुमपुञ्जे राजहंसो विय पमुदितचित्तो अङ्गाररासिम्हि पति। सो पन अग्गि बोधिसत्तस्स सरीरे लोमकूपमत्तं पि उण्हं कातुं न सक्कोति किं नाम एतं ति आह। पण्डित, नाहं ब्राह्मणो, सक्को अहं अस्मि तव वीमंसनत्थाय आगतो ति। सक्क, त्वं ताव तिट्ठ सकलो पि चे लोकसन्निवासो मं दानेन वीमंसेय्य नेव मे अदातुकामतं पस्सेय्याति बोधिसत्तो सीहनादं नदि। अथ

नं सक्को ससपण्डित, तव गुणो सकलकप्पं पाकटो होतूति पब्बतं पीळेत्वा पब्बतरसं आदाय चन्दमण्डले ससलक्खणं आलिखित्वा बोधिसत्तं आमन्तेत्वा तस्मिं वनसण्डे तस्मिं येव वनगुम्बे तरुण-दब्भतिणपिट्ठे निपज्जापेत्वा अत्तनो देवट्ठानं एव गतो। तेपि चत्तारो पण्डिता सम्मोदमाना सीलं पूरेत्वा उपोसथकम्मं कत्वा यथाकम्मं गता।

---

13. बावेरुजातको

अतीते बाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो मोरयोनियं निब्बत्तित्वा वुद्धिं अन्वाय सोभग्गप्पत्तो अरञ्ञे विचरि। तदा एकच्चे वाणिजा दिसाकाकं गहेत्वा नावाय बावेरुरट्ठं अगमंसु। तस्मिं किर काले बावेरुरट्ठे सकुणा नाम नत्थि। आगतागता रट्ठवासिनो तं कूपग्गे निसिन्नं दिस्वा पस्सथि' मस्स छविवण्णं गलपरियोसानं मुखतुण्डकं मणिगुळसदिसानि अक्खीनीति। काकं एव पसंसित्वा ते वाणिजके आहंसु, इमं अय्यो सकुणं अम्हाकं देथ, अम्हाकं हि इमिना अत्थो, तुम्हे अत्तनो रट्ठे अञ्ञं लभिस्सथा' ति। तेन हि मूलेन गण्हथा' ति। 'कहापणेन नो देथा' ति। न देमा' ति। अनुपुब्बेन वड्ढेत्वा सतेन देथा' ति वुत्ते अम्हाकं एस बहूपकारो, तुम्हेहि पन सद्धिं मेत्ती होतू' ति कहापणसतं गहेत्वा अदंसु। ते तं गहेत्वा सुवण्णपञ्जरे पक्खिपित्वा नानप्पकारेन मच्छमंसेन चे' व फलाफलेन च पटिजग्गिंसु। अञ्ञेसं सकुणानं अविज्जमानट्ठाने दसहि असद्धम्मेहि समन्नागतो काको लाभग्गयसग्गप्पत्तो अहोसि। पुनवारे ते वाणिजा एकं मयूरराजानं गहेत्वा यथा अच्छरासद्देन वस्सति पाणिप्पहारसद्देन नच्चति एवं सिक्खापेत्वा बावेरुरट्ठं अगमंसु। सो महाजने सन्निपतिते नावाय धुरे ठत्वा पक्खे विधूनित्वा मधुरस्सरं निच्छरेत्वा नच्चि। मनुस्सा तं दिस्वा सोमनस्सजाता—एतं अय्यो सोभग्गप्पत्तं सुसिक्खितसकुणराजानं अम्हाकं देथा' ति आहंसु। 'अम्हेहि पठमं काको आनीतो, तं गण्हित्थिदानि एतं मोरराजानं आनायिम्ह, एतम्पि याचथ। तुम्हाकं रट्ठे सकुणं नाम गहेत्वा आगन्तुं न सक्का' ति। होतु

अय्यो, अत्तनो रट्ठे अञ्ञं लभिस्सथ, इमं नो देथा' ति। मूलं वड्ढेत्वा सहस्सेन गण्हिंसु। अथ नं सत्तरतनविचित्ते पञ्जरे ठपेत्वा मच्छमंसफलाफलेहि चे' व मधुलाजासक्खरापानकादीहि च पटिजग्गिंसु। मयूरराजा लाभग्गयसग्गपत्तो जातो। तस्सागत-काऌतो पट्ठाय काकस्स लाभसक्कारो परिहायि, कोचि नं ओलोकितुं पि न इच्छि। काको खादनीयभोजनीयं अलभमानो काका'ति वस्सन्तो गन्त्वा उक्कारभूमियं ओतरि।

अदस्सनेन मोरस्स सिखिनो मञ्जुभाणिनो
काकं तत्थ अपूजेसुं मंसेन च फलेन च।
यदा च सरसम्पन्नो मोरो बावेरुमागमा
अथ लाभो च सक्कारो वायसस्स अहायथ।
याव नु' प्पज्जति बुद्धो धम्मराजा पभंकरो
ताव अञ्ञे अपूजेसुं पुथु समणब्राह्मणे।
यदा च सरसम्पन्नो बुद्धो धम्मं अदेसयि
अथ लाभो च सक्कारो तित्थियानं अहायथा' ति।

---

14. सुप्पारक जातको

अतीते भरुरट्ठे भरुराजा नाम रज्जं कारेसि। भरुकच्छं नाम पट्टनगामो अहोसि। तदा बोधिसत्तो भरुकच्छे निय्यामकजेट्ठस्स पुत्तो हुत्वा निब्बत्ति पासादिको सुवण्णवण्णो। सुप्पारककुमारो ति'स्स नामं करिंसु। सो महन्तेन परिवारेन वड्ढन्तो सोळसवस्सकाले येव निय्यामकसिप्पे निप्फत्तिं पत्वा अपरभागे पितु अच्चयेन निय्यामकजेट्ठको हुत्वा निय्यामककम्मं अकासि। पण्डितो ञाणसम्पन्नो अहोसि, तेन आरूळ्हनावाय ब्यापत्ति नाम न'त्थि। तस्स अपरभागे लोणजलपहटानि द्वे पि चक्खूनि नस्सिंसु। सो ततो पट्ठाय निय्यामकजेट्ठको हुत्वापि निय्यामककम्मं अकत्वा राजानं निस्साय जीविस्सामीति राजानं उपसंकमि। अथ नं राजा अग्घापनियकम्मे ठपेसि। ततो पट्ठाय रञ्ञो हत्थिरतनं अस्सरतनं मुत्तसारमणिसारादीनि अग्घापेति। अथे'कदिवसं रञ्ञो मङ्गलहत्थी भविस्सतीति काळपासाणकूटवण्णं एकं वारणं आनेसुं। तं दिस्वा राजा पण्डितस्य दस्सेथा'ति आह। अथ नं तस्य सन्तिकं नयिंसु। सो हत्थेन तस्स सरीरं परिमद्दित्वा नायं मङ्गलहत्थी भवितुं अनुच्छविको, पच्छावामकधातुको एस, एतं हि माता विजायमाना अंसेन पटिच्छितुं नासक्खि। तस्मा भूमियं पतित्वा पच्छिमपादेहि वामनकधातुको जातो'ति आह। हत्थिं गहेत्वा आगते पुच्छिंसु। ते सच्चं पण्डितो कथेती'ति वदिंसु। तं कारणं राजा सुत्वा तुट्ठो तस्स अट्ठ कहापणे दापेसि। पुने'कदिवसं रञ्ञो मङ्गलस्सो भविस्सतीति एकं अस्सं आनयिंसु। तम्पि राजा पण्डितस्स

सन्तिकं पेसेसि। सो हत्थेन परामसित्वा अयं मङ्गलस्सो भवितुं न युत्तो, एतस्स हि जातदिवसे येव माता मरि, तस्मा मातु खीरं अलभन्तो न सम्मा वड्ढितो ति आह। सा'पि स्स कथा सच्चा वा अहोसि। तम्पि सुत्वा राजा तुस्सित्वा अट्ठे' व कहापणे दापेसि। अथे' कदिवसं, मङ्गलरथो भविस्सतीति आहरिंसु। तम्पि राजा तस्स सन्तिकं पेसेसि। सो तं हत्थेन परामसित्वा अयं रथो सुसिररुक्खेन कतो, तस्मा रञ्ञो नानुच्छविको' ति आह। सापि' स्स कथा सच्चा व अहोसि। राजा तम्पि सुत्वा अट्ठे' व कहापणे दापेसि। अथ' स्स कम्बलरतनं महग्घं आनयिंसु। तम्पि तस्से' व पेसेसि। सो हत्थेन परामसित्वा 'इमस्स मूसिकच्छिन्नं एकं ठानं अत्थीति आह। सोधेन्ता तं दिस्वा रञ्ञो आरोचेसुं। राजा तुस्सित्वा अट्ठे' व कहापणे दापेसि। सो चिन्तेसि—अयं राजा एवरूपानि पि अच्छरियानि दिस्वा अट्ठे' व कहापणे दापेसि, इमस्स दायो नहापित दायो, नहापितस्स जातको भविस्सति, किं मे एवरूपेन राजुपट्ठानेन, अत्तनो वसनट्ठानं एव गमिस्सामीति सो भरुकच्छपट्टनं एव पच्चागमि। तस्मिं तत्थ वसन्ते वाणिजा नावं सज्जेत्वा कं निय्यामकं करिस्सामा' ति मन्तेन्ता सुप्पारकपण्डितेन आरूळ्हनावा न ब्यापज्जति एस पण्डितो उपायकुसलो, अन्धो समानो पि सुप्पारकपण्डितो व उत्तमो' ति तं उपसंकमित्वा निय्यामको नो होहीति वत्वा, तात, अहं अन्धो कथं निय्यामककम्मं करिस्सामीति वुत्ते सामि, अन्धापि तुम्हे येव अम्हाकं उत्तमो' ति पुनप्पुन याचियमानो साधु तात, तुम्हेहि आरोचितसञ्ञाय निय्यामको भविस्सामीति तेसं नावं अभिरूहि। ते नावाय महासमुद्दं पक्खन्दिंसु। नावा सत्त दिवसानि निरुपद्दवा अगमासि, ततो अकालवातं उप्पज्जि, नावा चत्तारो मासे पकतिसमुद्दपिट्ठे विचरित्वा खुरमालसमुद्दं नाम पत्ता, तत्थ मच्छा मनुस्ससमान-

गाथाय तस्स नामं पुच्छिसु । महासत्तो अनन्तरगाथाय आचिक्खि—

भरुकच्छा पयातानं-पे-दधिमालीति वुच्चतीति ॥

अस्मि पन समुद्दे रजतं उस्सन्नं । सो तम्पि उपायेन गहापेत्वा नावाय पक्खिपापेसि । नावा तम्पि समुद्दं अतिक्कमित्वा नीलकुसतिणं विय सम्पन्नसस्सं इव च ओभासमानं नीलवण्णं कुसुमालं नाम समुद्दं पापुणि । वाणिजा

यथा कुसो, व सस्सो, व समुद्दो पतिदिस्सति—पे—
गाथाय तस्स पि नामं पुच्छिसु । सो अनन्तरगाथाय आचिक्खि—
भरुकच्छा पयातानं—पे—कुसुमालीति वुच्चतीति ॥
तस्मिं पन समुद्दे नीलमणिरतनं उस्सन्नं अहोसि । सो तम्पि उपायेन गहापेत्वा नावाय पक्खिपापेति । नावा तम्पि समुद्दं अतिक्कमित्वा नलवनं विय च वेळुवनं विय च खायमानं नलमालं नाम समुद्दं पापुणि । वाणिजा

यथा नलो व वेळुं व समुद्दो पतिदिस्सति—पे—
गाथाय तस्स पि नामं पुच्छिसु । महासत्तो अनन्तरगाथाय कथेसि—

भरुकच्छा पयातानं—पे—नलमालीति वुच्चतीति ॥
अस्मिं पन समुद्दे वंसरागवेळुरियं उस्सन्नं, सो तम्पि गहापेत्वा नावाय पक्खिपापेसि । वाणिजा नलमालिं अतिक्कमन्ता वळभामुखसमुद्दं नाम पस्सिंसु, तत्थ उदकं कड्ढित्वा कड्ढित्वा सब्बतोभागेन उग्गच्छति तस्मिं सब्बतोभागेन उग्गतोदकं सब्बतोभागेन छिन्नतटमहासोब्भो विय पञ्ञायति, ऊमिया उग्गताय एकतो पपातसदिसं होति, भयजननो सद्दो उप्पज्जति सोतानि भिन्दन्तो विय हदयं फालेन्तो विय, तं दिस्वा वाणिजा भीततसिता
महाभयो भिंसनको सद्दो सुय्यत' मानुसो,

यथा सोब्भो पपातो च समुद्दो पतिदिस्सति—पे—गाथाय तस्स नामं पुच्छिंसु।

भरुकच्छा पयातानं—पे—वळभामुखीति वुच्चतीति बोधिसत्तो-अनन्तरगाथाय तस्स नामं आचिक्खित्वा ताता, इमं वळभामुखं समुद्दं पत्ता निवत्तितुं समत्था नावा नाम न' त्थि। अयं सम्पत्तनावं निमुज्जापेत्वा विनासं पापोतीति आह। तञ्च नावं सत्तमणुस्ससतानि अभिरुहिंसु, ते सब्बे मरणभयभीता एकप्पहारेन' व अवीचिम्हि पच्चमाना सत्ता विय अतिकरुणसरं मुञ्चिंसु। महासत्तो ठपेत्वा मं अञ्ञो एतेसं सोत्थिभावं कातुं समत्थो नाम न' त्थि, सच्चकिरियाय तेसं सोत्थिं करिस्सामीति चिन्तेत्वा ते आमन्तेत्वा ताता, मं खिप्पं गन्धोदकेन नहापेत्वा अहतवत्थानि निवासापेत्वा पुण्णपातिं सज्जेत्वा नावाय धुरे ठपेथा, ति। ते वेगेन तथा करिंसु। महासत्तो उभोहि हत्थेहि पुण्णपातिं गहेत्वा नावाय धुरे ठितो सच्चकिरियं करोन्तो ओसानगाथं आह—

यतो सरामि अत्तानं यतो पत्तो'स्मि विञ्ञुतं
नाभिजानामि संचिच्चा एकपाणम्पि हिंसितं,
एतेन सच्चवज्जेन सोत्थिं नावा निवत्ततू'ति।

चत्तारो मासे विदेसं पक्खन्ता नावा निवत्तित्वा इद्धिमा विय इद्धानुभावेन एकदिवसेने' व भरुकच्छपट्टनं अगमासि, गन्त्वा च पन थलेपि अट्ठूसभमत्तं ठानं पक्खंदित्वा नाविकस्स घरद्वारे अट्ठासि। महासत्तो तेसं वाणिजानं सुवण्णरजतमणिप्पवालवजिरानि भाजेत्वा अदासि, 'एत्तकेहि वो रतनेहि अलं, मा पुन समुद्दं पविसित्था'। ति च तेसं ओवादं दत्वा यावजीवं दानादीनि पुञ्ञानि कत्वा देवपुरं पूरेसि।

---

15. पटिच्चसमुप्पादो

तेन समयेन बुद्धो भगवा उरुवेलायं विहरति नेरञ्जराय तीरे बोधिरुक्खमूले पठमाभिसम्बुद्धो। अथ खो भगवा बोधिरुक्खमूले सत्ताहं एकपल्लङ्केन निसीदि विमुत्तिसुखपटिसंवेदि। अथ खो भगवा रत्तिया पठमं यामं पटिच्चसमुप्पादं अनुलोमपटिलोमं मनसाकासि—अविज्जापच्चया संखारा, संखारपच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं, नामरूपपच्चया सळायतनं, सळायतनपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा भवन्ति। एवं एतस्स केवलस्स दुक्खक्खण्डस्स समुदयो होति। अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा संखारनिरोधो, संखारनिरोधा विञ्ञाननिरोधो, विञ्ञाननिरोधा नामरूपनिरोधो, नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो, वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो उपादाननिरोधा, भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवं एतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होतीति। अथखो भगवा एतं अत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथ'स्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा यतो, पजानाति सहेतुधम्मंति॥

[From Vinaya Pitaka : Mahāvastu]

---

16. धम्मचक्क-पवत्तन-सुत्त

एवं मे सुतं—एकं समयं भगवा वाराणसियं विहरति इसि-पतने मिगिदाये। तत्र खो भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खू आमन्तेसि—द्वे मे भिक्खवे अन्ता पब्बजिते न सेवितब्बा। कतमे द्वे? यो चायं कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो, यो चायं अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो, एते खो भिक्खवे उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसंबुद्धा चक्खुकरणी ञाणकराणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। कतमा च सा भिक्खवे मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसंबुद्धा चक्खु-करणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय संबोद्धाय निब्बानाय-संवत्तति। अयं एव अरियो अट्ठंगिको मग्गो, सेय्यथीद—सम्मा-दिट्ठि सम्मासंकप्पो सम्मावाचा सम्माकम्मन्तो सम्मा आजीवो सम्मा वायामो सम्मासति सम्मासमाधि। अयं खो सा भिक्खवे मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसंबुद्धा चक्खुकरणी ञाण-करणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोद्धाय निब्बानाय संवत्तति। इदं खो पन भिक्खवे दुक्खं अरियसच्चं—जाति पि दुक्खा, जरा पि दुक्खा, व्याधि पि दुक्खा, मरणम्पि दुक्खं, अप्पियेहि सम्प-योगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यम्पि'च्छं न लभति तम्पि दुक्खं, संखित्तेन पञ्चु' पादानखन्धा पि दुक्खा। इदं खो पन भिक्खवे दुक्खसमुदयं अरियसच्चं—यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दिरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी, सेय्यथी'दं—कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा। इदं खो पन भिक्खवे दुक्खनिरोध-गामिनी पटिपदा अरियसच्चं, अयं एव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथी'दं—सम्मादिट्ठि सम्मासङ्कप्पो सम्मावाचा सम्माकम्मन्तो सम्माआजीवो सम्मावायामो सम्मासति सम्मासमाधि।

[From Sutte Nipata]

17. धनिय-सुत्त

(धनियो गोपो—)

"पक्कोदनो दुद्धखीरो'हं । अि अनुतीरे महिया समानवासो ।
छन्ना कुटी, अहितो गिनि । अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।" १

(भगवा—)

"अक्कोधनो विगतखिलो'हं अस्मि । अनुतीरे महिये'करत्तिवासो ।
विवटा कुटी, निब्बुतो गिनि । अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।" २

(धनियो गोपो—)

"अन्धकमकसा न विज्जरे । कच्छे रूळ्हतिणे चरन्ति गावो ।
वुट्ठिम्पि सहेय्युं आगतं । अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।" ३

(भगवा—)

"बद्धा हि भिसी सुसंखता । तिण्णो पारगतो विनेय्य ओघं ।
अत्थो भिसिया न विज्जति । अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।" ४

(धनियो गोपो—)

"गोपीमम अस्सवा अलोला । दीघरत्तं संवासिया मनापा ।
तस्सा न सुणामि किञ्चि पापं । अथ चे पत्थयसी पवस्सदेव ।" ५

(भगवा—)

"चित्तं मम अस्सवं विमुत्तं । दीघरत्तं परिभावितं सुदन्तं ।
पापं पन मे न विज्जति । अथ चे पत्थयसी पवस्सदेव ।" ६

(धनियो गोपो—)

"अत्तवेतनभतो'हं अस्मि । पुत्ता च मे समानिया अरोगा ।
तेसं न सुणामि किञ्चि पापं । अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।" ७

(भगवा—)

"नाहं भतको'स्मि कस्सचि । निब्बिट्ठेन चरामि सब्बलोके ।
अत्थो भतिया न विज्जति । अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।" ८

(धनियो गोपो—)
"अत्थि वसा, अत्थि धेनुपा । गोधरणियो पवेणियो पि अत्थि ।
उसभो पि गवम्पती च अत्थि । अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।" ९

(भगवा—)
"न'त्थि वसा, न'त्थि धेनुपा । गोधरणियो पवेनियो पि न'त्थि ।
उसभोपि गवंपतीध न'त्थि । अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।" १०

(धनियो गोपो—)
"खीला निखाता असम्पवेधी । दामा मुञ्जमया नवा सुसण्ठाना ।
नहि सक्खिन्ति धेनुपापि तिछेत्तुं । अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।"११

(भगवा—)
"उसभोरिव छेत्वा बन्धनानि । नागो पूतिलतं व दालयित्वा ।
नाहं पुन उपेस्सं गब्भसेय्यं । अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ।" १२
निन्नञ्च थलञ्च पूरयन्तो । महामेघो पावरिस तावदेव ।
सुत्वा देवस्स वस्सतो । इमं अत्थं धनियो अभासथ ।" १३
"लाभा वत नो अनप्पका । ये मयं भगवन्तं अद्दसाम ।
सरणं तं उपेम चक्खुम । सत्था नो होहि तुवं महामुनि ।" १४
"गोपी च अहञ्च अस्सवा । ब्रह्मचरियं सुगते चरामसे ।
जातिमरणस्स पारगा । दुक्खस्स'न्तकरा भवामसे ।" १५

(मारो पापिमा—)
"नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा । गोमिको गोहि तथे'व नन्दति ।
उपधी हि नरस्स नन्दना । न हि सो नन्दति यो निरूपधि ।" १६

(भगवा—)
"सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा । गोमिको गोहि तथे'व सोचति ।
उपधी हि नरस्स सोचना । न हि सो सोचति यो निरूपधीति ।" १७

[From Sutta Oipāta]

18. मालुङ्क्यपुत्त गाथा

मनुजस्स पमत्तचारिनो। तण्हा वड्ढति मालुवा विय,
सो पलवती हुराहुरं। फलमिच्छं व वनस्मि वानरो। १।
यं एसा सहती जम्मी तण्हा लोके विसत्तिका,
सोका तस्स पवड्ढन्ति अभिवड्ढं व बीरणं। २।
यो चे' तं सहती जम्मिं तण्हं लोके दुरच्चयं,
सोका तम्हा पपतन्ति उदबिन्दु व पोक्खरा। ३।
तं वो वदामि भद्दं वो यावन्ते'त्थ समागता,
तण्हाय मूलं खणथ उसीरत्थो व बीरणं,
मा वो नळं' व सोतो व मारो भञ्जि पुनप्पुनं। ४।
करोथ बुद्धवचनं, खणो वे मा उपच्चगा,
खणातीता हि सोचन्ति निरयम्हि समप्पिता। ५।
पमादो रजो सब्बदा, पमादानुपतितो रजो,
अप्पमादेन विज्जाय अब्बहे सल्लं अत्तनो ति। ६।

[From Thera Gatha]

19. महाप्रजापतिगोतमी गाथा

बुद्धवीर नमो त्यत्थु सब्बसत्तान उत्तम ।
योमं दुक्खा पमोचेसि अञ्ञञ्च बहुकं जनं ॥
सब्बदुक्खं परिञ्ञातं हेतुतण्हा निसोसिता ।
अरियट्ठंगिको मग्गो निरोधो फुसितो मया ॥
माता पुत्तो पिता भाता अय्यिका च पुरे अहुं ।
यथाभुच्चं अजानन्ती संसरी'हं अनिब्बिसं ॥
दिट्ठो हि सो भगवा अन्तिमोयं समुस्सयो ।
विक्खीणो जातिसंसारो न'त्थि दानि पुनब्भवो ॥
आरद्धवीरिये पहितत्ते निच्चं दळ्हपरक्कमे ।
समग्गो सावके तस्स एसा बुद्धान वन्दना ॥
बहूनं बत अत्थाय माया जनयि गोतमं ।
व्याधिभयतुन्नानं दुक्खक्खन्धं व्यपानुदि ॥

[From Theri Gatha]

प्राकृतापभ्रंशसंग्रहः

1. अशोकाभिलेखः

इयं धम्मलिपि देवानं प्रियेन प्रियदसिना राञ्ञा लेखापिता इध न किंचि जीवं आरभित्पा प्रजूहितव्यं न च समाजो कतव्यो। बहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवानं प्रियो प्रियदसि राजा। अस्ति पि तु एकचा समाजा साधुमता देवानं प्रिअस प्रियदसिनो राञ्ञो।

पुरा महानसम्हि देवानं प्रियस प्रियदसिनो राञ्ञो अनुदिवसं बहूनि प्राणसतसहस्रानि आरभिसु सूपाथाय। से अज यदा अयं धम्मलिपि लिखिता ती एव प्राणा आरभरे सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो। सोऽपि मगो न ध्रवो। एतेऽपि त्री प्राणा पछा न आरभिसरे।

—Giruar Rock Edict I.

अयं ध्रमदिपि देवन प्रिअस रञो लिखापितु हिद नो किचि जिवे अरभितु प्रयुहोतवे नोऽपि च समज कटव। बहुक हि दोषं समयस्पि देवन प्रियो प्रियद्रशी रय दखति। अस्ति पि च एकतिये समये ससुमते देवन प्रिअस प्रिअद्रशिस रञो।

पुरा महनससि देवनं प्रिअस प्रिअद्रशिस रञो अनुदिवसो बहुनि प्रणशत-सहस्रनि अरभियसु सुपठये। सो इदनि यद अय ध्रमदिपि लिखित तद त्रयो वो प्रण हंञंति मजुर दुवि म्रुगो १। सोऽपि म्रुगो नो ध्रुवं। एतपि प्रण त्रयो पच न अरभिशंति।

—Shahbazgarhi Rock Edict I.

अयि ध्रमदिपि देवन प्रियेन प्रिअदसिन रजिन लिखपित

हिद नो किचि जिवे अरभितु प्रयुहोतविये नो पि च समजे कटविये। बहुक हि दोस समजस देवनं प्रिये प्रियद्रशि रज दखति। अस्ति पि चु एकतिय समज सधुमत देवन प्रियस प्रियद्रशिस रजिने।

पुरो महनससि देवन प्रियस प्रियद्रशिस रजिने अनुदिवसं बहुनि प्रणशतसहस्रणि अरभिसु सुपथ्रये। से इदनि अयि ध्रमदिपि लिखित तद तिनि येव प्रणनि अरभियंति दुवे मजुर एके मृगे। से पि चु मृगे नो ध्रुवं। एतनि पि चु तिनि प्रणनि पच नो अरभिशंति।

—Mansehra Rock Edict I.

इयं धम्मलिपि देवानं पियेना पियदसिना लेखिता हिदा नो किछि जिवे आलभितु पजोहितविये नो पि चा समाजे कटविये। बहुका हि दोसा समाजसा देवानं पिये पियदसि लाजा दखति। अथि पि चा एकतिया समाज साधुमता देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने।

पुले महानससि देवानं पियसा पियदसिसा लाजिने अनुदिवसं बहुनि पानसहसानि आलभियिसु सुपठाये। से इदानि यदा इयं धम्मलिपि लेखिता तदा विंनि येव पानानि आलभियंति दुवे मजुला एके मिगे। सेपि चु मिगे नो धुवे। एतानि पि चु तिनि पानानि नो आलभियसंति।

—Kalsi Rock Edict I.

इयं धम्मलिपी खेपिंगलरि पवतसि देवानं पियेन पियदसिना लाजिना लिखापिता। हिद नो किछि जीवं आलभितु पजोहितविये नो पि च समाजे कटविये। बहुकं हि दोसं समाजसि दखति

देवानां पिये पियदसी लाजा। अथ पि चु एकतिया समाजा साधु-मता देवानं पियस पियदसि ने लाजिने।

पुलुवं महानससि पियस पियदसिने लाजिने अनुदिवसं बहूनि पानसतसहसानि आलभियिसु सूपटाये। से अज अदा इयं धम्मलिपी लिखिता तिंनि येव पानानि आलभियन्ति दुवे मजूला एके मिगे। से पि चु मिगे नो धुवं। एतानि पि चु तिंनि पानानि पछा नो आलभियिसंति।

Jaugada Rock Edict I.

---

2. अशोकस्य भब्राभिलेखः

प्रियदसि लाजा मागधे संघं अभिवादे (तू) नं आहा अपा-बाधतं च फासुविहालतं चा ।

विदिते वे भंते आवतके हमा बुधसि धम्मसि संघसि ति गालवे चं प्रसादे च ।

ए केछि भंते भगवता बुधेन भासिते सवे से सुभासिते वा। एचु खो भंते हमियाये दिसेया हेवं सधम्मे चिलठितिके होस-तीति अलहामि हकं तं वतवे ।

इमानि भंते धम्मपलियायानि विनयसमुकसे अलियवसानि अनागतभयानि मुनिगाथा मोनेयसूते उपतिसपसिने ए चा लाघुलोवादे मुसावादं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते । एतानि भंते धंमपलियायानि इछामि किंति बहुके भिखुपाये चा भिखु-निये चा अभिखिनं सुनेयु चा उपधालेयेयु चा हेवम्मेवा उपासका चा उपासिका चा ।

एतेनि भंते इमं लिखापयामि अभिप्रेतं म जानंतू ति ।

—Bhabra Minor Rock Edict I.

3. सोहगौराताम्रपत्रम्

सवतियान मह्मगन ससने मनवसतिकड सिलनातें उसगमे व एते दवे कोठगलनि ति(य)वेनिमाथुल-चचुमोत्रम-भलकन वल कयियति अतियायिकय नो गहितवय ।

4. हेलियोडोरस्य बेसनगराभिलेखः

देव देवस वासुदेवस गरुडध्वजे अयं
कारिते इ (अ) हेलिओडोरेण भाग—
वतेन दियस पुत्रेण तक्खसिलाकेन
योन-दूतेन (आ) गतेन महाराजस
अंतलिकितस उपता सकासं रञो
कासीपुत्रस भागभद्रस त्रातारस
वसेन चतुदसेंन राजेन वधमानस।
त्रिनि अमुत-पदानि (इअ) (सु)-अनुठितानि
नेयंति (स्वगं) दम चाग अप्रमाद ॥

5. खारवेलस्य हाथीगुम्फाभिलेखः

नमो अरहंतानं । नमो सव-सिधानं ।

अइरेण महाराजेन महामेघवाहनेन चेतिराज-वंसवधनेन पसथ-सुभलखनेन चतुरंत-लुठ(ण)-गुणउपितेन कलिङ्गाधिपतिना सिरिखारवेलेन पंदरस-वसानि सिरि-[कडार]-सरीरवता कीडिता कुमार-कीडिक । ततो लेख-रूप-गणना-ववहारविधिविसारदेन सव-विजावदातेन नव-वसानि योवरजं पसासितम् । संपुंण-चतुवीसतिवसो तदानि वधमानसेसयो-वेनाभि-विजयो ततिये कलिंगराज-वंसे पुरिस-युगे महाराजाभिसेचनं पापुनाति ।

अभिसितमतो च पधमे वसे वात-विहत-गोपुरपाकारनिवेसनं पतिसंखारयति कलिंगनगरि खिबि [र इ-] सितल-तडाग-पाडियो च वंधापयति सवूयान-प[टि]-संथपनं च कारयति पनतिसाहि सत-सहसेहि । पकतियो च रंजयति ।

दुतिये च वसे अचितयिता सातकंनिं पछिम-दिसं हय-गज-नर-रध-बहुलं दंडं पठापयति । कण्हवेंणा-गताय च सेनाय वितासिति असिकनगरम् ।

ततिये पुन वसे गन्धव-वेद-बुधो दप-नत-गीत-वादित-संदसनाहि उसव-समाज-कारापनाहि च कीडापयति नगरिम्........

—Hathigumpha Cave Inscription

8. कीत्तिशर्मणः पत्रं

प्रिथदर्शन चोझ्बो क्रनय षोठंघ ल्यिपेथज्ञ च ओगु किर्तिशर्मे अरोग्य परिप्रोछति पुनपुनो बहो अप्रमेयो एवं च ज्ञच ।

प्रथमद्रो इमद्दे मगोन पगोष च हस्तंमि लेख प्रहुड प्रहिदेमि । तदे व्यदर्थ भविदवो । अवि पेत अवनम्मि पल्यि परुवर्षि-शेस यं च इम-वर्षि पल्यि तह ज्ञवंस्पोर तोम्मिहि ज्ञध इश विज्ञजिद्वो । यति तदे पुरिम पस्चिम विज्ञजिष्यतु पंथम्मि परज्ञ भविष्यति । तुओ षोठंघ ल्यिपेय तनु-गोठदे व्योषिशसि नधन भगोन ।

यं च भुम नवक अंनेन ग्रिद अतिबहो क्रिनिद्वो इश प्रहद्वो । वेग्र किल्मि ख्रियन पल्यि भुम नवक अंन स्पोर विज्ञजितवो ।

अवि पल्यि उट तेनेव ज्ञध इश विज्ञजितवो । म इम्चि तोम्गान परिदे उट विथिष्यतु । तज्ञ उट प्रचेय रयसछि लिहिद्ग्र क्रिद्ग्र लिविस्तरंमि अनति-लेख अत्र गद ।

तहि चोझ्बो क्रयनज्ञ लिहमि । एत कर्येमि तुओ चित कर्तव्य । एष ल्यिपेय न चित करेति । यो पुन तहि कर्येनि हछन्ति शछ्यमि अहो करंनय । यो अत्र शुभाशुभज्ञ प्रवृति हछति एमेव लेहरग्राज्ञ हस्तंमि लेख इश प्रहतवो । यो इश वर्तमान ल्यिम्सुअज्ञ परिदे व्यदर्थ भविदवो ।

(Niya Documents From Chinese Turkestan)

9. राजानुदेशः

महनुअव महरय [लिहति] चोइओ सोम्जकज मंत्र देति ।

एवं च जनंदो भविद्व्य यो लिखमि ज्रच । यहि अनति दिदेमि रजकिचज क्रिदेन तह रज-कर्यम्मि रत्र-दिवस ओसुक अवजिद्व्य । अवि स्पस जिवित परिचगेन अनद् रछिद्व्य । यहि खेम खोतम्नदे वर्तमन हचति इंथुअमि महि महरयज्र पद्-मुलम्मि विन्नदि-लेख प्रहद्व्य ।

अवि अदेहि तोंग वुक्तोअज्र हस्तम्मि विन्नदि-लेख प्रहि-देसि । तदे अहु महरय ज्रवे न्वद्र्थेमि ।

अवि परुवर्ष उवद्ए सुपियन परिदे सुठ अत्र तुमहु उपशंगि-द्व्य हुअति इत्यर्थ तुस्य रजिये जंन नगरंमि असिदेथ । अहुनो सुपिए [ज्र] र्वि गतंति यत्र पुर्वे असिद्ए हुअंति तत्र असि-तंति । तुमहु रजंमि निरोग हुद ।

अवि खोतंनदे योग-छेम अहुनो लउन्दाइंचि जंन लिहिद्व्य सुध नगर रछिद्व्य अवशिठे रजिजम्न ओडिद्व्य न भुय नगरंमि विहेडिद्व्य ।

अवि च परु-वर्षम्मि अत्र रयक शुक मसु सम्नालिद्ग हुअति । अहुनो श्रुयति एद् मसु-मसुवि षोठंग द्रम्गधरे ज्रवे परिछिन-वितंति । यहि एद् अनतिलेख अत्र एशति प्रठ चवल परु-वर्षि शुक मसु इम-वर्षि मसु सर्वस्पर सम्नालिद्व्य एक-देशम्मि निसिंचिद्व्य ।

अवि यथ अत्र यत्मपरकुतेन कुवन त्सगिन कोयिमढिन जर्वत्र नगर-द्रंगेषु अंन संगलिद् निहिद् स अस्ति हुतु । एमेव

अहुनो कुवन त्संगिन को [यि मढिन] अंन संगलिद्वो नगरंमि······[अस्]-ति हुतु ।

अवि यं कल शिघ्र-कर्येन लेह्रग़ान इश रय-द्वरम्मि गच्छिशति यस अस्ति स्तोर ह्छति तदे निखलिद्वो रजदे सम सम परिक्रे दद्व्य येन रज-कर्यनि न इंचि शिशिल भविष्यंति। अवि घज्ञ अभिठे नगरम्मि संगलिद्ग़ हुतु। चंद्रिकमंत रोतं चुरोम रत्र-दिवज्ञ चवल इश रय-द्वरम्मि विज्ञजिद्वो।

अवि श्रुयति रजि-जंन अत्र पुरन [ग़ ऋणे]न परोस्परस्य सुठ विहेडेंदि। एडे संऋधए जंन वरिदए होतु म इंचि दरंना-ग़ेन जंनस्य डपेडेंति। यं कलो खोतंनदे योग़-छेम भविष्यदि रज्य स्थिष्यदि तं कल शोधेष्यंदि।

अवि च श्रुयदि यथ अत्र चोझ्बो सोंजकेन अठोवए अझते जंन सुठ अवोमत करेंदि तह न लंचग करेंदि। एकिस्य एतज्ञ रज पिचविदेमि। न ज्ञर्व-जंनस्य रज-कर्यनि कर्तवो। इदोवदए न भुय अवोमत कर्तव्य। यो मंनुश चोझ्बो सोंजकेन अवोमत करिशति से मंनुश इश रजध्वरम्मि विज्ञजिद्वो। इशेमि निग्रह लभिष्यति।

मज्ञे १०+१ दिवज्ञे ४+३।

चोझ्बो सोंज्ञकज्ञ दद्व्य।

(Niya Documents)

---

10. अप्रमादरति : भिक्षुधर्मश्च

(१) अप्रमद प्रशजति प्रमादु गरदितु सद ।
(२) हिण-धम न जेव्र अप्रमदेण न जवक्रि
मिछदिठि न रोयअ न जिअ लोक-वढणो ।
(३) यो दु पुवि प्रमजति पछ सु न प्रमजति
सो इद लोकु ओहजेदि अभ मुनो व सुरिउ ।
(४) अरहध निखमध युजध बुध-शशगे
धुणथ मुचुणो जेण नडकर व कुञरु ।
(५) अप्रमद स्वदिमद सुशिल भोदु भिक्षवि
सुजमहिद-जगप जचित अणुरक्षध ।
(६) यो इमस धम-विणइ अप्रमतु विहपिदि
प्रहइ जदि-जत्शर दुखसद करिषदि ।
(७) त यु वदमि भुद्रनु यवदेथ जमकद
अप्रमद रद भोध जधमि सुप्रवेदिदि ।
(८) प्रमद परिवजेति अप्रमद रद जद
भवेथ कुशल धम योक-क्षेमज प्रतअ ।
(९) जलव्हु नदिमञेअ नञेष स्विहओ षिअ
अञेष स्विहओ भिखु जमधि नधिकछदि ।
(१०) अप-लभो दु यो भिखु जलव्हु नदिमञदि
त यु देव प्रशजदि शुध-यिव अतद्रिद ।
(११) कमरमु कम-रदु कमु अणुविचिदओ
कमु अणुस्वरो भिखु जधर्म परिहयदि ।
(१२) धमरमु धम-रदु धमु अणुविचिदओ
धमु अणुस्वरो भिखु जधर्म न परिहयदि ।

(१३, १४) न शिल-वद-मत्रेण बहोषुकेण व मणो
अध ज्रमधि-लभेण विवित-शयणेण व ।
फुषमु नेखम-सुखु अप्रुधजण-ज़ेविद
भिखु विश्पशमु अ [पदि] अप्रते असव-क्षये ।
(१५) न भिखु तवद भोदि यवद भिक्षदि पर
विश्प धर्म ज्रमदइ भिखु भोदि न तवद ।
(१६) यो दु वहेति पवण बदव ब्रम्म-यियव
ज्रगइ चरदि लोकु सो दु भिखु दु वुचदि ।
(१७) मेत्र-विहरि यो भिखु प्रज्रनु बुध-शशणे
दुणदि पवक धर्म द्रुम-पत्र व मदुरु ।
(१८) मेत्र-विहर यो भिखु प्रज्रनु बुध-शशणे
पडिविजु पद शद ज्रगरवोशमु सुह ।

(From the Khotan Dhammapada)

11. अहिंसा

(१) कोहाइमाणं हनिया च वीरे
लोभस्स पासे निरयं महन्तम्
तम्हा हि वीरे विरओ वहाओ
छिन्देज्ज सोयं लहुभूयगामी।

(२) गन्थं परिन्नाय इहज्ज वीरे
सोयं परिन्नाय चरेज्ज दन्ते
उमुग्गा लद्धुं इह माणवेहिं
नो पाणिणं पाणे समारभेज्ज।

(From Āyaraṅga Sutta)

---

12. महावीरजन्म

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढ-सुद्धस्स छट्ठी पक्खेणं महाविजयपुप्फुत्तर-पवर-पुण्डरीया महाविमानाओ वीसंसागरोवमट्ठितीयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए विइक्कंताए दुस्सम-सुसमाए समाए बहु-विइक्कंताए पंच-हत्तरीए वासेहिं अद्धनवमेहिं य मासेहिं सेसेहिं एक्कवीसाए तित्थयरेहिं इक्खाग-कुल-समुप्पन्नेहिं कासवगोत्तेहिं दोहि य हरिवंश-कुल-समुप्पन्नेहिं गोयमसगोत्तेहिं तेवीसाए तित्थयरेहिं विइक्कंतेहिं समणे भगवं महावीरे चरिमे तित्थयरे पुब्ब-तित्थवरनिदिट्ठे माहणकुण्डग्गामे नयरे उसभत्तस्स माहणस्स कोडाल-सगोत्तस्स भारियाए देवानंदाए माहणीए जालंधर-सगोत्ताए पुब्बरत्तावरत्त-कालसमयंसि हत्थुत्तराहि नक्खत्तेणं जोगं उवागएणं आहार-वक्कंतीए भव-वक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ।

(From Kappasutta)

13. मूलदेव-कथा

वेण्णायडे णयरे मण्डिय णाम तुण्णाओ पर-दव्वहरणपसत्तो आसी। सो य दुट्ठ-गण्डो मि त्ति जणे पगासेन्तो जाणु-देसेण निच्चं एव अद्दावलेवलित्तेन वद्ध-वणपट्टो रायमग्गे तुण्णागसिप्पं उवजीवइ। चङ्कमन्तो विय दण्ड-धरिएणं पाएणं किलिम्मन्तो कहंचि चंकमइ। रत्तिं च खत्तं खणिऊण दव्वजायं घेत्तूण नगरसण्णिहिए उज्जाणेग-देसे भूमिघरं तत्थ निक्खिवइ। तत्थ य से भगिणी कण्णगा चिट्ठइ। तस्स भूमिघरस्स मज्झे कूवो। जं च सो चोरो दव्वेण पलोभेउं सहायं दव्ववोढारं आणेइ तं सा से भगिणी अगडसमीवे पुव्व-नत्थासणे णिवेसिउं पाय-सोय-लक्खेण पाए गेण्हिऊण तम्मि कूवए पक्खिवइ। तओ सो विवज्जइ।

एवं कालो वच्चइ णयरं मुसन्तस्स। चोरग्गहा तं ण सक्केन्ति गेण्हिउं। तओ णयरे बहुरवो जाओ। तस्स य मूलदेव राया पुव्व-भणियविहाणेण जाओ। कहिओ य तस्स पउरेहिं तक्कर-वइयरो जहा—एत्थ णयरे पभूयकालो मुसन्तस्स वट्टइ कस्सइ तक्क-रस्स। ण य तीरइ केणइ गेण्हिउं। ता करेउ किम्पि उवायं।

ताहे सो अन्नं नगरारक्खियं ठवेइ। सो विण सक्कइ चोरं गेण्हिउं। ताहे मूलदेव सयं नील-पडं पाउणिऊण रत्तिं णिग्गतो। मूलदेवो अणज्जन्तो एगाए सभाए णिवण्णो अच्छइ जाव सो मण्डिय-चोरो आगन्तुं भणइ—को एत्थ अच्छइ।

मूलदेवेण भणियं—अहं कप्पडिओ।

तेण भणइ—एहि माणुसं करेमि।

मूलदेव उट्ठिओ। एगम्मि ईसर-घरे खत्तं खयं सुबहुं दव्व-जायं णीणेउण मूलदेवस्स उवरिं चडावियं। पयट्टा णयरबाहिरियं।

मूलदेवो पुरओ चोरो असिणा कड्ढिएण पिट्ठओ एइ। संपत्ता भूमिघरं। चोरो तं दव्वं निहणिउं आरद्धो।

भणिया य णेण भगिणी—एयस्स पाहुणयस्स पायसोयं देहि।

ताए कूव-तडसण्णिविट्ठे आसने णिवेसिओ। ताए पाय-सोयलक्खेण पाओ गहिओ कूवे छुहामि त्ति। जाव अतीव-सुकुमारा पाया ताए णायं जहा एस कोइ अणुभूय-पुव्व-रज्जो विहलियंगो। तीए अणुकंपा जाया। तओ ताए पाय-तले सण्णिओ णस्स त्ति मा मारिज्जिहिसि त्ति। पच्छा सो पलाओ। ताए बोलो कओ णट्ठओ त्ति। सोयसिम् कड्ढिऊण मग्गे ओलग्गो।

मूलदेवो राय-पहे अइसन्निविट्ठं णाऊण चच्चर सिवंतरिओ ठिओ। चोरो तं सिवलिंगं एसो पुरिसो त्ति काउं कङ्कमएण असिणा दुहा-काउं पडिनियत्तो गओ भूमिघरं। तत्थ वसिऊण पहायाए रयणीए तओ निग्गन्तूण गओ बहिं। अन्तरावणे तुण्णागत्तं करेइ।

राइणा अब्भुट्ठाणेण पूइओ आसने निवेसाविओ सुवहुं च पियं आभासिओ संलत्तो मम भगिणिं देहित्ति।

तेण दिन्ना वियाहिया राइणा। भोगा य से संपदत्ता।

कइसुवि दिणेसु गएसु राइणा मण्डियो भणिओ—दव्वेण कज्जं त्ति।

तेण सुवहुं दव्वजायं दिण्णं। राइणा संपूजिओ।

अण्णया पुणो मग्गिओ पुणो वि दिण्णं। तस्सो य चोरस्स अतीव सक्कारसम्माणं पउञ्जइ।

एएन पगारेण सव्वं दव्वं दवाविओ। भगिणिं से पुच्छइ। तीए भणति—एत्तियं चेव वित्तं।

तओ पुव्वावेइय-लेक्खाणुसारेण सव्वं दव्वं दवावेऊण मण्डियो सूलाए आरोविओ।

(From Jacobi's Collections)

14. कक्कुकाभिलेखः

ओम् । सग्गापवग्गा-मग्गं पढमं सयलाण कारणं देवं
णीसेस-दुरिअ-दलणं परम-गुरुं णमह जिण-णाहं ।
रहु-तिलओ पडिहारो आसी सिरि-लक्खणो त्ति रामस्स
तेण पडिहार-वन्सो समुण्णइं एत्थ सम्पत्तो ।
विप्पो हरिअन्दो भज्जा आसि त्ति खत्तिआ भद्दा
ताण सूओ उप्पण्णो वीरो सिरि-रज्जिलो एत्थ ।
अस्स वि णरहड णामो जाओ सिरि-नाहडो त्ति एअस्स
अस्स वि तणओ ताओ तस्स वि जसवद्धणो जाओ ।
अस्स वि चन्दुअ णामो उप्पण्णो सिल्लुओ वि एअस्स
झोटो त्ति तस्से तणओ अस्स वि सिरि भिल्लुओ चाई ।
सिरि-भिल्लुअस्स तणओ सिरि कक्को गुरु-गुणेहि गारविओ
अस्स वि कक्कुअ-णामो दुल्लहदेवीए उप्पण्णो ।
ईसिविआसं हसिअं महुरं भणिअं पलोइअं सम्मं
णमयं जस्स ण दीणं रो [सो] थेओ थिरा मेत्ती ।
णो जम्पिअं ण हसिअं ण कयं ण पलोइअं ण सम्भरिअम्
ण थियं ण परिब्भमिअं जेण जने कज्जपरिहीणम् ।
सुत्था दुत्था वि पया अहमा तह उत्तिमा वि सोक्खेण
जणणिव्व जेण धरिआ णिच्च णिय-मण्डले सव्वा ।
उअरोह-राअ-मच्छर-लोहेहिम्पि णाय-वज्जिअं जेण
न कओ दोण्ह विसेसो ववहारे कवि मणयं पि ।
दिअवर-दिण्णाणुज्जं जेण जणं रञ्जिऊण सयलंपि
णिम्मच्छरेण जणिअं दुट्ठाण वि दण्डणिट्ठवणम् ।

धण-रिद्ध-समिद्धाण वि पउराणं णिअकरस्स अब्भहिअम्
लक्खं सयञ्च सरिसन्तणञ्च तह जेण-दिट्ठाइम् ।
णव-जोव्वण-रूअ-पसाहिएण सिंगार-गुणगरुक्केण
जणवय-णिज्जं अलज्जं जेण जेण णेय सञ्चरिअं ।
वालण गुरू तरुणाण तह सही गववयाण तणओ व्व
णिअ-सुचरिएहि णिच्चं जेण जणो पालिओ सव्वो ।
जेण णमन्तेण सया सम्माणं गुणथुइं कुणन्तेण
जंपन्तेण य ललिअं दिण्णं पणईण धणणिवहम् ।
मरुमाड-वल्ल-तमणी-परिअङ्का-अज्ज-गुज्जरत्तासु
जणिओ जेण जणाणं सच्चरिअ-गुणेहिं अणुराओ ।
गहिऊण गोहणाइं गिरिम्मि जालाउ [ला] ओ पल्लीओ
जणिआवो जेण विसमे वडणाणय-मण्डले पयडम् ।
णीलुप्पल-दल-गन्धा रम्मा मायन्द-महुअविन्देहिं
वर-इच्छु-पण्ण-छण्णा एसा भूमी कया जेण ।
वरिस सएसु अ णवसुं अट्ठारसमअग्गलेसु चेत्तम्मि
णक्खत्ते विहु-हत्थे बुहवारे धवल-बीआए
सिरि-कक्कुएण हट्टं महाजणं विप्प-पयइ-वणिबहुलं ।
रोहिन्सकूअगामे णिवेसिअं कित्ति-विद्धीए
मड्डोअरम्मि एक्को बीओ रोहिंसकूअ-गामम्मि ।
जेण जसस्स व पुञ्जा एए त्थम्भा समुत्थविआ ।
तेण सिरि-कक्कुएणं जिणस्स देवस्स दुरिअणिद्दलणं
कारविअं अचलं इमं भवनं भत्तीए सुहजणयम् ।
अप्पिअं एअं भवणं सिद्धस्स धणेसरस्स गच्छम्मि
तह सन्त-जम्ब-अम्बय-वणि - भाउड - पमुहगोट्ठीए ।

---

15. महावीरस्य परिव्रजनम्

(१) अह दुच्चर-लाढं अचारि वज्जभूमिं च सुब्भभूमिं च
पन्तं सेज्जं सेविंसु आसणगाइं चएव पन्ताइम् ।

(२) लाढेहिं तस्सुवसग्गा बहवे जाणवया लूसिंसु
अह लुक्ख-देशिए भत्ते कुक्कुरा तत्था हिंसिंसु
निवइंसु ।

(३) अप्पे जणे निवारेइ लूसणए सुणए डसमाणे
छुच्छुक्-कारेन्ति आहन्तुं समणं कुक्कुरा डसन्तुत्ति ।

(४) एलिक्खए जणे भुज्जो बहवे वज्ज-भूमि फरुसासी ।
लट्ठिं गहाय नालियं समणा तत्थ एव विहरिंसु ।

(५) एवं पि तत्थ विहरन्ता पुट्ठपुब्वा अहेसि सुणएहिं
संलुञ्चमाणा सुणएहिं दुच्चरगाणि तत्थ लाढेहिम् ।

(६) निहाय दण्डं पाणेहिं तं कायं वोसज्ज-मणगारे
अह गामकण्टए भगवं ने अहियासए अभिसमेच्चा ।

(७) नाओ संगाम-सीसे वा पारए तत्थ से महावीरे
एवं पि तत्थ लाढेहिं अलद्ध-पुव्वो वि एकया गामो ।

(८) उवसंकमन्तं अपदिन्नं गामन्तियं पि अप्पत्तं
पडिनिक्खमित्तु लूसिसु एयाओ परं पलेहि त्ति ।

(९) हयपुब्बो तत्थ दण्डेणं अदु वा मुट्ठिणा अदु फालेणं
अदु लेलुणा कवालेणं हन्ता हन्ता बहवे कन्दिंसु ।

(१०) मंसूणि छिन्नपुव्वाइं ओट्ठमियाए एगया कायं
परिस्सहाइं लुञ्चिसु अदु वा पंसुणा उवकरिंसु ।

(११) उच्चालइय निहणिंसु अदु वा आसणाओ खलइंसु
वोसट्ठ-काए पणयासि दुक्खसहे भगवं अपडिन्ने।

(१२) सूरो संगामसिसे व संवुडे तत्थ से महावीरे
पडिसेवमाणो फरुसाइं अचले भगवं रीइत्था।

(From Āyarangasutta)

---

16. वसुदत्तकथा

अत्थि उज्जेणी नाम नयरी। तत्थ च वसुमित्तो नाम गहवइ परिवसति। भज्जा से धणसिरी नाम पुत्तो से धणवसू धूया से वसुदत्ता। तेण य वसुमित्त-सत्थवाहेण कोसंबी-वत्थव्वस्स धण-देव-सत्थवाहस्स वाणिज्जपसंगेण आगयस्स धूया वसुदत्ता दिण्णा। सो य वत्तकल्लाणो तं घेत्तूण कोसंबिं आगओ पिउ-माउ-सहिओ सुहं परिवसइ।

तस्स च कालेणं धणदेवस्स वसुदत्ताए दोन्नि पुत्ता जाया। तइएण य गब्भेणं आसण्णप्पसवा। भत्ता य से पवसिओ। सुयं य ताए—उज्जेणिं सत्थओ वच्चइ। सा य पिउ-माउ-बन्धवाणं उक्कंठिया गन्तुमणा सस्सूससूरं आपुच्छइ—उज्जेणिं वच्चामि त्ति। ततो तेहि भणिया—पुत्ति एक्कल्लिया कहिं वच्चिहिसि। भत्ता य ते पवसियओ। पडिच्छ जाव आगच्छइ। ततो गच्छसि। सा भणइ—वच्चामि। किं मम भत्ता करिहिति। तेहिं पुणो वि वारिज्जन्ती निच्छइ सोउं। सच्छन्दा गुरुजणाइक्कम-कारिया पुत्ते घेत्तूण पत्थिया। ते वि य परिहीण कुटुम्ब-विहवा अम्हे न करेइ वयणं ति तुण्हिक्का ठिया। सावि य मन्दभग्गा गया ताव सत्था दूरं अतिक्कन्तो। सा वि सत्थपरिब्भट्ठा अन्नेण मग्गेण गया। भत्ता य से तद्दिवसं चेव आगओ। पुच्छिया य णेण माया अम्मो कहिं वसुदत्ता गय त्ति। ताए य भणिओ—पुत्त उज्जेणी-सत्थेण समं अम्हेहिं वारिज्जमाणी वि गय त्ति। ततो सो—अहो अकज्जं कयं ति भणेऊण पुत्त-कलत्ता-बद्ध-नेहाणुरागो गहिय-पत्थयणो मग्गतो अन्नेसन्तो गतो। अणु-

सरन्तेण य सा अडविं अयन्ती दिट्ठा भममाणी। तोसिया अणेणं पुणरवि अणुणेउं। पत्थिया पविट्ठा य अडविं महल्लं। अत्थमिए दिणयरे आवासिओ।

तम्मि य समए वसुदत्ताए पोट्टे वेयणा जाया। ततो धणदेव-सत्थवाहेण रुक्खसाहा-पल्लवे भञ्जिऊण मण्डओ से कवो। तत्थ य वसुदत्ता पसूय दारयं पयाया। तत्थ य अन्धकारे रत्तिं रुहिर-गंधेणं मिगसंसाहारो अडवी-सावय-खयंकरो महापइभओ वग्घो आगतो। तेण य सो धणदेव बीसत्थो चेव गलए घेत्तूण नीओ। सा वि य पइवियोगजनिय-दुक्खभय-कलुण-सोग-सन्तत्त-हियया रोयमाणी—तं जायमेत्तयं अभव्वो त्ति भणन्ती मोहं गया। ते वि य कलुण असरणा भय-वेविय-सव्वंगा बाला मोहं गया। सो वि य तद्दिवसं जायओ दारओ थण्णं अलभमाणो उवरओ। सा वि य चिरेण पच्चागय-वेयणा समाणी परिदेवन्ती पभाए पुत्ते घेत्तूण पत्थिया। अकालवरिसेण गिरि-नदी पुण्णा। सा य तं दट्ठूण एगं पुत्तं उत्तारेऊण बितियं उत्तारेन्ती विसमसिला-तले निसिरियचलणा पडिया। दारओ य से हत्थाओ पब्भट्ठो सो य अवरो दारओ उदगब्भासे ठिओ तं मातं पाणिए पडियं दट्ठूण तेणवि य जले अप्पओ छूढो।

सा वि य तवस्सिणी चण्डवेग-वाहिणीए गिरिनदीए दूरं छूढा तत्थ य नदी-कूले पडियस्स पायवस्स साहाए लग्गा मुहु-त्तन्तरस्स य आसत्था सइरं उट्ठिया। तत्थ य सा अच्छन्ति नदीतडे वणगोयरेहिं तक्कर-पुरिसेहिं गहिया पुच्छिया य आणीया सीहगुहं नाम पल्लिं अल्लिया य चोर-सेणावइस्स कालदण्डस्स। तेण य सा रुवस्सिनित्ति काऊण भज्जा कया य अन्तेउरं। सा य सव्वाणं सेनावइ-महिलाणं अग्गमहिसी जाया।

तओ ताओ तक्कर-महिलाओ पइणो सरीर-परिभोगं अलभ-

माणीओ उवायं चिंतिन्ति—किहं एयं परिच्चएज्ज त्ति । तस्स य तीसे कालेण पुत्तो जातो । सो य माउ-सरिसओ । तओ ताहिं सेणावई विण्णविओ—सामि तुमं अइ-वल्लभाए इमाए चरियं न-याणसि । एसा पर-पुरिससत्तहियया । एस य से पुत्तो अन्नेण जायओ त्ति । जइ ते विपच्चओ अप्पाणं एयं च पेच्छह त्ति । तेन कलुस-हियएण खग्गं कड्ढिऊण अप्पा जोइओ दिट्ठं च णेण मुहं । विच्छिन्नं महत्त-विहत्त-गण्डलेहं । रत्तायत-विसालनयणं विसिट्ठ-वुग्ग-मण्डुक्क-नासं विप्फालिय-थूल-लंबोट्ठं अप्पणो मुहं दट्ठूण तं च दारयं एवं एयं ति भणति । ततो तेण य अपरिच्छिय-बुद्धिना पावेण तेण य खग्गेणं दारओ मारिओ । सा वि य वेत्तक-सप्पहराभिहया मुण्डेऊण तक्करे सन्दिसइ—वच्चह भो एयं रुक्खे बन्धेह त्ति । ततो ते तक्कर-पुरिसा तं गहाय दूरं गया । तत्थ य ते पन्थब्भासे एगस्स साल-रुक्खस्स मूले रज्जुए बेढिऊग कण्टय-साहा समन्ततो परिक्खिविऊण नियत्ता । सा वि वराई पुव्वकम्म-निव्वत्तियं दुक्खं अनुभवंती बहूणि य हियएणं चिन्त-यन्ती अणाहा असरणा य अच्छति ।

तत्थ य तीए भागधेज्जेहिं उज्जेणिगमणीओ सत्थो तत्थेव तम्मि चेव दिवसे पाणीयसुलभे पएसे आवासिओ । ततो सत्थाओ तण-कट्ठ-पत्त-हारया केइ दूरं गया । तेहि य सा कण्टक-साहाहिं रुद्धा रज्जु-परिवेढिय-सरीरा रुक्ख-मूले एक्कलिया दिट्ठा पुच्छिया य । तीए य स-कलुणं रोयन्तीए सव्वा अणुहूअ-दुक्ख-परम्परा परि-कहिया । ततो सा तेहिं जायाणुकंपेहिं मुक्का । तं च घेत्तूण सट्ठं गया सत्थवाहस्स जहावत्तं परिकहियं । ततो सत्थवाहेण समासाऊण दिण्णच्छायण-भोयणा भणिया—पुत्ति सत्थेण समं वच्चसु वीसत्था । मा वीहेह त्ति । ततो सा आसासिया वीसत्था तेण सत्थेणं समं उज्जेणिं वच्चइ । तेण य सत्थेण समं बहु सिस्सिणी-परिवारा जिण-व्रयण-सारदिट्ठ-परमत्था सुव्वया नाम

गणिणी जीवन्तसामि-वन्दिया वच्चइ। सा य तीसे पाय-मूले धम्मं सोऊण सत्थवाहेणाणुन्नाया पव्वइया। नामं च से कण्टियज्जय-त्ति। ततो सा ताहिं अज्जाहिं समं उज्जेणिं पत्ता पिउ-माउबन्धु-वग्गेण य सह मिल्लीणा। कहेउण य अप्पनो दुक्खं दुगुण-जायसंवेगा संझाए तवे य उज्जुत्ता धम्मं करेइ।

(From Vasudevahiṇḍī)

17. स्वप्नवासवदत्तम् (Act IV)

[ततः प्रविशति विदूषकः ।]

विदूषकः—[सहर्षम्] भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो । भो ! को णाम एवं आणादि—तादिसे वयं अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति । इदाणिं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ण्हाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि । एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि, जह वादसोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि ! भो ! सुहं णाम अपरिभूदं अकल्लवत्तं च ।

[ततः प्रविशति चेटी ।]

चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ ? [परिक्रम्यावलोक्य] अम्हो ! एसो अय्यवसन्तओ । [उपगम्य] अय्य ! वसन्तअ ! को कालो, तुमं अण्णेसामि ।

विदूषकः—[दृष्ट्वा] किंणिमित्तं भद्दे ! मं अण्णेससि ?

चेटी—अम्हाणं भट्टिणी भणादि-अविण्हादो जामादुओ ति ।

विदूषकः—किंणिमित्तं भोदि ! पुच्छदि ।

चेटी—किमण्णं । सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति ।

विदूषकः—ण्हादो तत्तभवं । सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअणं ।

चेटी—किंणिमित्तं वारेसि भोअणं ?

विदूषकः—अधण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खिपरिवट्टो संवुत्तो।

चेटी—ईदिसो एव्व होहि।

विदूषकः—गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदो सआसं गच्छामि।

[निष्क्रान्तौ।]

इति प्रवेशकः

[ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च।]

चेटी—किण्णिमित्तं भट्टिदारिआ पमदवणं आअदा ?

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुम्हआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति।

चेटी—भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहि विअ मोत्तिआलम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहिं।

पद्मावती—हला ! जदि एव्वं, किं दाणि विलम्बेसि ?

चेटी—तेण हि इमस्सि सिलावट्टए मुहुत्तणं उपविसदु भट्टिदारिआ। जाव अहं वि कुसुमावचअं करेमि।

पद्मावती—अय्ये ! किं एत्थ उपविसामो ?

वासवदत्ता—एव्वं होदु।

[उभे उपविशतः।]

चेटी—[तथा कृत्वा] पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिया अद्धमणसिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेहिं पूरिअं मे अञ्जलिं।

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो। विइत्तदा कुसुमाणं। पेक्खदु पेक्खदु अय्या।

वासवदत्ता—अहो ! दस्सणीअदा कुसुमाणं।

चेटी—भट्टिदारिए ! किं भूयो अवइणुस्सं ?

पद्मावती—हला ! मा मा भूयो अवइणिअ ।

वासवदत्ता—हला ! किंणिमित्तं वारेसि ?

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिस्ससि सम्माणिदा भवेअं ।

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता ?

पद्मावती—अय्ये ! ण जाणामि, अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि ।

वासवदत्ता [आत्मगतम्] दुक्खरं खु अहं करेमि । इअं वि णाम एव्वं मन्तेदि ।

चेटी—अभिजादं खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तेति ।

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो ।

वासवदत्ता—किं किं ?

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए त्ति ?

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं !

पद्मावती—कहं तुवं जाणासि ?

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] हं, अय्यउत्तादेणपिक्खत्र अदक्कन्दो समुदाआरो । एव्वं दाव भणिस्सं [प्रकाशम्] जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं ण परित्तजदि ।

पद्मावती—होदव्वं ।

चेटी—भट्टिदारिए ! साहु भत्तारं भणाहि—अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति ।

पद्मावती—उत्तो मए अय्यउत्तो ।

वासवदत्ता—तदो किं भणिदं ?

पद्मावती—अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ तुह्णीओ संवुत्तो ।

वासवदत्ता—तदो तुवं किं विअ तक्केसि ?

पद्मावती—तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरिअ दक्खिणदाए मम अग्गदो ण रोदिदि त्ति ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] धण्णा खु म्हि, जदि एव्वं सच्चं भवे ।

[ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च]

विदूषकः—ही ! ही ! पचिअपडिअबन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवणं । इदो दाव भवं ।

अन्ते ज्जेव गहिदे भावमिश्शेहिं। एत्तिके दाव एदश्श आगमे। अध मं मालेध कुट्टेध वा।

नाग० (अङ्गुलीयकमाघ्राय)—जालुअ ! मच्छो उदलमन्तलग्गदोत्ति णत्थि सन्देहो, जदो अअं आमिसगन्धो वाआदि। आगमो दाणिं एदस्स एसो विमरिसिदव्वो ता एध लाअउलं ज्जेव गच्छह्म। •

रक्षिणौ (धीवरं प्रति)—

गच्छ ले गण्डिच्छेदअ ! गच्छ। (इति परिक्रामन्ति)।

नाग०— सूअअ ! इध गोउलदुआले अप्पमत्ता पडिपालेध मं, जाव लाअउलं पवेसिअं णिक्कमामि।

उभौ०—पविशदु आवुत्ते शामिप्पशादत्थं। (नाग०-परिक्रम्य निष्क्रान्तः)।

सूच०—जालुअ ! चिलाअदि क्खु आवुत्ते।

जालु०—णं अवशलोवशप्पणीआ राआणो होन्ति।

सूच०—फुल्लन्ति मे अग्गहत्था इमं गण्ठिच्छेदअं वावादिदुं।

धीव—णालिहदि भावे अआलणमालके भविदुं।

जालु० (विलोक्य)—एशे अहमाणं इश्शले पत्ते गेण्हिअ लाअशाशणं आअच्छदि। शम्पदं एशे शउलाणं मुहं पेक्खदु, अहवा गिद्धशिआणं बली होदु।

नाग०—(प्रविश्य)-सिग्घं सिग्घं एदं।

धीव०—हा हदोह्मि। (इति विषादं नाटयति)।

नाग०—मुञ्चध जालोवजीविणं। उववण्णे से अङ्गुलिअस्स आगमे अम्हशामिणा जाव कधिदं।

सूच०—जहा आणवेदि आवुत्ते। जमवशदिं गदुअ पडिणिउत्ते क्खु एशे।

(इति धीवरं बन्धनान्मोचयति)।

धीव०—भट्टके ! शम्पदं तुह केलके मे जीविदे । (इति पादयोः पतति) ।

नाग०—उट्ठेहि, एसे भट्टिणा अङ्गुलीअमुद्दसम्मिदे, पारिदोसिए दे पसादीकिदे, ता गेण्ह एदं ।

(इति धीवराय कराङ्गुलीयकं ददाति) ।

धीव०—(सहर्षं सप्रणामश्च प्रतिगृह्य)—अणुग्गहीदोम्हि ।

जालु०—एशे क्खु रण्णा तधा अणुग्गहीदे, जधा शूलादो ओदालिअ हत्थिक्खन्धे शमालोविदे ।

सूच०—आवुत्ते ! पालितोशिएण जाणामि महालिहल्लदणेण अङ्गुलीअएण शामिणो बहुमदेण होदव्वं ।

नाग०—ण तस्सिं भट्टिणो महालिहलदणं त्ति कदुअ परिदोसो । एत्ति उण तक्केमि ।

उभौ०—किं उण ।

नाग०—तस्स दंसणेण भट्टिणा कोवि अहिमदो जनो सुमरिदोत्ति जदो मुहुत्तअं पइदि गम्भीरोवि पज्जुस्सुअमणा आसी ।

सूच०—तोसिदे दाणिं भट्टा आवुत्तेण ।

जालु०—णं भणेमि इमस्श मच्छशत्तुणो किदे । (इति धीवरमसूयया पश्यति) ।

जालु०—धीवल ! महत्तले शम्पदं अम्हाणं पिअवअश्शके शंवुत्तेशि कादम्बली शक्खिके क्खु पठमं शोहिदे इच्छीअदि । ता एहि, शुण्डिआलअं ज्जेव गच्छम्ह ।

19. गाहासत्तसई

१. सहि इरिसि ण्विअ गइ मा रुव्वसु तिरिअवलिअमुहअन्दम्
एआणं बालबालुंकितन्तुकुडिलाणं पेम्माणम् ।

२. रन्धणकम्मणिउणिए मा जूरसु रत्तपाडलसुअंधं
मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिही ण पज्जलइ ।

३. अमअमअगअणसेहर रअणिमुहतिलअ चन्द दे छिवसु
च्छित्तो जेहिं पिअअमो ममं पि तेहिं विअ करेहिम् ।

४. पिअविरहो अप्पियदंसणं-अ गरुआइं दो वि दुक्खाइं
जिएं तुमं कारिज्जसि तिएं णमो आहिजाइए ।

५. दिट्ठा चूआ अग्घाइआ सुरा दक्खिणाणिलो सहिओ
कज्जाइं ण्विअ गरुआइं मामि को वल्लहो कस्स ।

६. अज्ज भए तेण पिणा अणुहूअसुरआइं संभरन्तीए
अहिणवमेहाणं रवो णिसामिओ वज्झपडहो व्व ।

७. आरम्भन्तस्स धुअं लच्छी मरणं वा होइ पुरिसस्स
तं मरणं अणारम्भे वि होइ लच्छी उण ण होइ ।

८. विरहाणलो सहिज्जइ आसाबन्धेण वल्लहजणस्स
एक्कग्गामपवासो माए मरणं विसेसेइ ।

९. कइअवरहिअं पेम्मं णत्थि ण्विअ मामि माणुसे लोए
अह होइ कस्स विरहो कस्स विरहे होन्तम्मि को जीअइ ।

१०. रूअं अच्छिसु थिअं फरिसो अंगेसु जम्पिअं कण्णे
हिअअं हिअए णिहिअं विओइअं किं इह देव्वेन ।

११. पासासंकी काओ णेच्छइ दिण्णं पि पहिअघरणीए
ओअन्तकरअलोग्गलिअवलअमज्झट्ठिअं पिण्डम् ।

१२. अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति गणरीए
पधमे व्विअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहि चित्तलिओ।

१३. पुट्ठिं पुससु किसोअरि पडोहरंकोल्लपत्तचित्तलिअं
छेआहिं दिअरजाहाहिं उज्जुए मा कलिज्जिहिलि।

१४. दिढरोसकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहिं विप्पिअं कन्तो
राहुमुहम्मि वि ससिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति।

१५. सूइज्जइ हेमन्तम्मि दुग्गओ पुप्फुआसुअन्धेग
धूमकविलेण परिविरलतन्तुणा जुण्णवडएण।

१६. वसणम्मि अणुव्विग्गा विहवम्मि अगव्विआ भए धीरा
होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा।

१७. मरगसूअइविइविद्धं व मोत्तिअं पिअइ आअअग्गिवो
मोरो पाउसआले तणग्गलग्गं उअअबिन्दुं।

१८. सुप्पउ तइओ विगओ जामो त्ति सहिआ कीस मं भणह
सेहालिआणं गन्धो ण देइ सोत्तुं सुअह तुम्हे।

१९. चावो सहावसरलं विच्छिवइ सरं गुणम्मि वि पडन्तं
वंकस्स उज्जुअस्स-अ सम्बन्धो किं चिरं होइ।

२०. कत्थ गअं रइविंबं कत्थ पणट्ठाओ चन्दताराओ
गअणे वलाअपन्ति कालो होरं व कड्ढेइ।

२१. जइ भमसि भमसु एमेअ कण्ह सोहग्गगव्विरो गोट्ठे
महिलाणं दोसगुणे विआरइउं जइ खमोसि।

२२. तुह दंसणे सअण्हा सद्दं सोऊण णिग्गआ जाइं
तइ बोलीणे ताइं पआइं बोधव्विआ जाआ।

२३. जं जं पलोएमि दिसं पुरओ लिहिअ व्व दीससे तत्तो
तुह पडिमा-पडिवाडिं वहइ व्व सअलं दिसाअक्कं।

२४. पड्कमइलेण छीरेकपाइणा दिण्णजाणुवडणेण
आणन्दिज्जइ हलिअ पुत्तेण व सालिच्छेत्तेण।

२५. वाआइ किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तिं व लिक्खए लेहे
तुह विरहे जं दुक्खं तस्स तुमं चेअ गहिअत्थो ।

२६. दुस्सिक्खिअरअणपरिक्खएहिं विट्ठोसि पत्थरे ताव
जा तिलमेत्तं वट्टसि मरगअ का तुज्झ मुल्लकहा ।

२७. कमलं मुअन्त महुअर पक्ककोइत्थाणं गंधलोहेण
आलेक्खलड्डुअं पामरो व्व छिविऊण जाणिहिसि ।

२८. गिज्जन्ते मङ्गलगाइआहिं परगोत्तदिण्णअण्णाए
सोउं व णिग्गओ उअह होमवहुआए रोमंचो ।

२९. जं जं आलिहइ मणो आसावट्टिहिं हिअअफलअम्मि
तं तं वालो व्व विही णिहुअं हसिऊण पम्हुसइ ।

३०. सिन्धवपव्वअसच्छहाइं धुअतूलपुंजसरिसाइं
सोहन्ति सुअणु मुक्कोअआइं सरए सिअब्भाइम् ।

३१. मज्झे पअणुअपंकं अवहोवासेसु साणचिक्खिल्लं
गामस्स सीमसिमन्तअं व रच्छामुहं जाअं ।

[compiled by Hāla]

20. पाहुडदोहा

१. देहहो पिक्खिवि जर-मरणु
मा भउ जीव करेहिं
जो अजरामरु बम्भ परु
सो अप्पाण मुणेहि।

२. सिव विणु सत्ति ण वावरइ
सिउ पुणु सत्ति विहीगु
दोहि वि जाणहि सयलु जगु
बुज्झइ मोह-विलीणु।

३. जेण णिरंजणि मणु धरिउ
विसय-कसायहिँ जन्तु
मोक्खह कारणु एत्तडउ
अवरइँ तन्तु णा मन्तु।

४. ताम कु-तित्थइँ परिब्भमइँ
धुत्तिम ताम करंति
गुरुहुँ पसाए जाम ण वि
देहहँ देउ मुणन्ति।

५. पण्डिय पण्डिय पण्डिया
कणु छण्डिवि तुस कण्डिया,
अत्थे गन्थे तुट्ठो सि
परमत्थु ण जाणसि मूढो सि।

[Rāma Siha]

---

21. भविसयत्तकहा

१. माइ महल्लमहुज्जमविज्जेम्
बन्धुयत्तु संचलिउ वणिज्जेम् ॥

२. तेण समानु मइं भि जाइव्वउ
तं बोहित्थु तीरि लाइव्वउ ।

३. देसन्तरपवासु माणिव्वउ
नियपुण्णह पमाणु जाणिव्वउ ।

४. दइवायत्तु जइ वि उल्लसिव्वउ
तो पुरिसी ववसाउ करिव्वउ ।

५. तं णिसुणेवि सगग्गिरवयणी
भणइँ जणेरि जलद्दियणयणी ।

६. हा इउ पुत्त काइँ पइँ जंपिउ
सिविणन्तरि, वि णाहि महु जंपिउ ।

७. एक्क अकारणि कुविएअवियप्पें
दिण्णु अगन्तु दाहु तउ बप्पेम् ।

८. अण्णुपि पइँ देसन्तरु जन्तहो
को महु सरणु हियइ पोजलन्तहो ।

९. अण्णु वि तेणु समउ तउ जन्तहो
णिव्वुइ खणु वि नाहिं महु चित्तहो ।

१०. को जाणइ कण्णमहाविसइ
अणुदिणु दुम्मइ मोहियइम् ।
समविसमहावही अन्तरइं
दुट्ठसवत्तिहिँ दोहियइम् ।

[Dhanapāla].

22. वज्जालग्गम्

१. अमयं पाइयकव्वं पढिउं सोउं च जे न याणन्ति,
कामस्स तत्ततत्तिं कुणन्ति ते कह न लज्जन्ति ।

२. दुक्खं कीरइ कव्वं कव्वम्मि कए पयुञ्जणा दुक्खं
सन्ते पउञ्जमाणे सोयार दुल्लहा होन्ति ।

३. पाइयकव्वम्मि रसो जो जायइ तह व छेयभणियेहिम्
उययस्स च वासिअसियलस्स तित्तिं न वच्चामो ।

४. देसियसद्दपलोट्टं महुरक्खरछन्दसंठियं ललियं
फुडवियडपायडत्थं पाइयकव्वं पढेयव्वं ।

५. वे पुरिसा धरइ धरा अहवा दोहिं पि धारिया धरणी
उवयारे जस्स मइ उवयरियं जो न पम्हुसइ ।

६. दिढलोहसंखलाणं अण्णाण वि विविहपासवन्धाणं
ताणं चिय अहियथरं वायावन्धं कुलीणस्स ।

७. कत्तो उग्गमइ रवि कत्तो वियसन्ति पंकयवणाइं
सुयणाण जत्थ णेहो न चलइ दूरट्ठियाणं पि ।

८. जं-जि खमेइ समत्थो धणवन्तो जं न गव्वं उव्वहइ
जं च सविज्जो नमिरो तिसु तेसु अलंकिया पुहवी ।

९. अप्पाणं अमुणन्ता जे आरम्भन्ति दुग्गमम्
कज्जं परमुहपलोइयाणं ताणं कह होइ जयलच्छी ।

१०. तुङ्गो च्चिय होइ मणो मणंसिणो अन्तिमासु वि दसासु
अत्थयन्तस्स वि रविणो किरणा उद्धं चिय फुरन्ति ।

११. न महुमहणस्स वच्छे मज्झे कमलाग नेय खीरहरे
ववसायसायरे सुपुरिसाण लच्छी फुडं वसइ ।

---

23. सन्देशरासकम्

(a)

१. जइ अत्थि नई गंगा तियलोए णिच्च-पयडिय-पहावा
वच्चइ सायर-समुह तो सेस-सरी म वच्चन्तु ।

२. जइ सरवरम्मि विमले सूरे उइयम्मि विअसिआ णलिणी
ता किं वाडि-विलग्गा मा विअसउ तुम्बिणी कह वि ।

३. जइ भरहभावछन्दे नच्चइ णवरंग-चंगिमा तरुणी
ताकिं गाम-गहिल्ली ताली-सद्दे ण णच्चेइ ।

४. जइ बहुल-दुद्धे संमीलिया य उल्ललइ तण्डुला खीरि
ता कण-कुक्कससहिआ रब्बडिया मा दडब्वडउ ।

५. जा जस्स कव्व-सत्ती सा अलज्जिरेण भणियव्वा
जइ चउमुहेण भणियं ताइँ सस-क मा भणिज्जन्तु ।

(b)

१. तवण-तित्थु चाउद्दिसि मियच्छि वखाणिअइ
मूलथाणु सुपसिद्धउ महियलि जाणियइ
तिहँ हुन्तउ हउँ इविकण लेहउ पेसियउ
खंभाइत्तइँ वच्चउँ पहु-आएसियउ ।

२. एय वयण अयन्निवि सिन्धुब्भव-वयणी
ससिउ सासु दीहुण्हउ सलिलब्भव-नयणी
तोडि करंगुलि करुण सगग्गिर गिर पसरु
जालन्धरि समीरिण मुद्ध थरहरिअ चिरु ।

३. रुइवि खणद्धउ फुसवि नयन पुण वज्जरिउ
खम्भाइत्तह णामि पहिय तणु जज्जरिउ

तह महु अच्छइ णाहु विरह-उल्हावयरु
अहिअ-कालु गंभियउ ण आयउ णिद्दयरु ।

४. पाउ मोडिवि निमिसिद्दु पहिय जइ दय करि
कहउँ किंपि संदेसउ पिय तुच्छक्खरिहिं
पहिअ भणइ कणयंगि कहइ कि रुन्नयन
• घिज्जन्ति णिरु दीसहि उव्विन्नमियहयण ।

५. जसु णिग्गमि रेणुक्करडि किअ ण विरह-दवेण
किव दिज्जइ सन्नेहडउ तसु निट्ठुरय मणेण ।

६. जसु पवसन्त ण पवसिआ मुइअ विओइ ण जासु
लज्जिज्जउ सन्देसडउ दिन्ती पहिय पियासु ।

७. लज्जिवि पथिय जइ रहउ हियउ न धरणउ जाइ ।
गाह पढिज्जसु इक्क पिय कर लेविणु मण्णाइ ।

८. तुह विरह-पहर संचूरिआइ विहडन्ति जं न अंगाइं
तं अज्ज-कल्ल संघडइसहे णाह तग्गन्ति ।

[Abdar Rahman]

---

24. कीर्त्तिलता

१. तिहुअन-खेत्तहि काञ्वि तसु किति-वल्लि पसरेइ
अक्खर-खंभारंभञो मञ्चो बंधि न देइ ।

२. तें मोञे भलञो निरुधि गए जइसओ तइसओ कव्व
खल खेल-च्छल दूसिहइ सुअण पसंसइ सव्व ।

३. सुअण पसंसइ कव्व मझु दुज्जन बोलइ मन्द
अवसओ विसहर विस वमइ अमिञ विमुकइ चन्द ।

४. सज्जन चिन्तइ मनहि मने भित्त करिअ सब कोए
भेअ कहन्ता मज्झु जइ दुज्जन वइरि ण होए ।

५. वालचन्द विज्जावइ-भासा
दुहु नहि लग्गइ दुज्जनहासा ।
ओ परमेसर-हर-सिर सोहइ
ई निच्चई नाअर-मन मोहइ

६. का परबोधबञो कमण जणावञो
किमि नीरस मने रस लए लावञो ।
जइ सुरसा होसइ मझु भासा
जो बुज्झिह सो करिह पसंसा ।

७. महुअर बुज्झइ कुसुम-रस कव्व-कलाउ छइल्ल
सज्जन पर-उअआर-मन दुज्जन नाम मइल्ल ।

८. सक्कय-वाणी बुहुअन भावइ
पाउअ-रस को मंम न पावइ ।
देसिल-वअणा सब जण-मिट्ठा
तें तइसन जंपञो अवहट्ठा ॥

[Vidyāpati]

25. प्राकृतपैङ्गलम्

अरे रे वाहहि कान्ह णाव छोडि, डगमग कुगति ण देहि.
तइ इत्थि णइहि सन्तार देइ, जो चाहसि सो लेहि ।

२. जस सीसइ गङ्गा गोरि अधंङ्गा
गिमि पहिरिअ फणिहारा
कण्ठट्ठिअ वीसा पिन्धण दीसा
सन्तारिअ संसारा ।
किरणावलिकन्दा बन्दिय चन्दा
णयण हि अणल फुरन्ता
सो मङ्गल दिज्जउ बहुसुख किज्जउ
तुम्ह भवानी कन्ता ॥

३. जे गञ्जिअ गउलाहिवइ राइ
उडउ ओड्ड जस भए पलाइ
गुरुविक्कम विक्कम जिणिअ तुज्झ
ता कण्ण-परक्कम इह झुज्झ ।

४. सेर एक्क जइ पावहि घित्ता
मण्डा वीसा पकाइल नित्ता
टङ्क एक्कु जइ सिन्धव पाआ
सो हउ रङ्क सो हूइह राआ ॥

५. ढोल्ला मारिअ ढिल्लि मह मच्छिअ मेच्छअ मेच्छसरीअ
पुर जज्जल मल्लवर चलिय वीर हम्बीर
चलिअ वीर हम्बीर पअभर मेइणि कम्पइ
दिगमग णह अन्धार धूलि सूर रह झप्पइ

दिग मग णह अन्धार आणु खुरसाणक ओल्ला
दरवलि दमसु विपक्ख मास ढिल्लि मह ढोल्ला।

६. सहस मअमत्त गअ लाख लख पक्खरिअ
साहि दुइ साजि खेलन्त गिन्दू
कोप्पि पिअ जाहि तहि थप्पु जसु विमल महि
जिणइ णहि कोइ तुअ तुलक हिन्दू ॥

७. राआ लुद्ध समाज खल
वहू कलहारिणि सेवक धुत्तउ
जीवण चाहसि सुक्ख जइ
परिहरु घर जइ बहुगुणजुत्तउ ॥

८. उच्च उठाअण विमल घरा
तरुणी घरिणी विणअपरा
वित्तक पूरल मुद्धहरा
वरिसा समआ सुक्खकरा।

९. जिणि कंस विणासिअ कित्ति पआसिअ
मुट्ठि अरिट्ठि विणास करु
गिरि तोलि धरु
जमलज्जुण भञ्जिअ पअभर गंजिअ
कालिअ-कुल संहार करु
जसे भुअण भरु
चाणूर विहंडिअ णिअ कुल मण्डिअ
राहा-मुह-महु पाण करे
जनि भमरवरे
सोइ तुम्ह नराअण विप्पपराअण
चित्तहि चिन्तिअ देउ वरा
भव-भीइ-हरा।

१०. जाआ माआ पुत्ता धुत्ता
इण्णे जाणी किज्जा जुत्ता ।

११. सो मज्झु कन्ता
दूर दिगन्ता
पाउस आवे
चेलु दुलावे

१२. पण्डव-वंसहि जम्म धरिज्जे
सम्पअ अज्जिअ धम्मक दिज्जे
सोइ जुहिट्ठिर संकट पाआ
देवह लिक्खिअ केण मेटाआ ।

१३. बालो कुमारो छअ-मुण्डधारी
उवाअहीणा मुज्झि एक्क णारी
अहण्णिसं खाइ विसं भिखारी
गई भवित्ती किल का हमारी ।

१४. तरल-कमलदल-सरि-जुअ-णअणा
सरल-समअ-ससि-सुसरिसवअणा
मअगल-करिवर-सअलस-गमणी
कमण सुकिअ-फल विहि गढु रमणी ।

26. रत्नावली (Act IV)

(चतुर्थोऽङ्कः)

(ततः प्रतिशति रत्नमालामादाय साम्रा सुसंगता) ।

सुसंगता—(सकरुणं निःश्वस्य)—हा पिअसहि साअरिए ! हा लज्जालुए ! हा सहीगणवच्छले ! हा उदारसीले ! हा सोम्मदंसणे ! कहिं गदासि । देहि मे पडिवअणं । (इति रोदिति ।) (ऊर्ध्वमवलोक्य निश्वस्य च) हं हो देव्वहदअ । अकरुण । असामण्णरूवसोहा तादिसी तुए जइ णिम्मिदा ता कसि उण ईदिसं अवत्थन्तरं पाविदा । इयं च रअणमाला जीविदणिरासाए ताए कस्सवि बम्हणस्स हत्थे पडिवादेसुत्ति भणिअ मम हत्थे समप्पिदा । ता जाव कंपि बम्हणं अण्णेसामि । (नेपथ्यभिमुख-मवलोक्य) अए । कहं एसो क्खु बम्हणो वसन्तओ इध एव आअच्छदि । ता इमस्सिं एव्व पडिवादइस्सं । (ततः प्रविशति हृष्टो बसन्तकः) ।

बसन्तक—ही ही । भो भोः । अज्ज क्खु पिआ वअस्सेण पसादिदाए तत्तभोदीए वासवदत्ताए बंधाणदो मोचिअ सहत्थदिण्णेहि मोदअलड्डुआहिं उदरं मे सुपूरिदं किदं । अण्णं च । एदं पट्टंसुअजुअलं कण्णाभरणं अ दिण्णं । ता जाव दाणिं पिअवअस्सं । (इति परिक्रामति) ।

सुसंगता (रुदती सहसोपसृत्य)—अज्ज वसन्तअ । चिट्ठ दाव तुमं मुहुत्तअं ।

वसन्तक (दृष्ट्वा)—कधं सुसंगदा । सुसंगदे । एत्थ । किं णिमित्तं रोदीअदि । ण क्खु साअरिआए अच्चाहिदं किंपि संवुत्तम् ।

सुसंगता—एदं ज्जेव्व णिवेदइदुकामा । सा क्खु तवस्सिणी देवीए उज्जइणिं णीदेत्ति प्पवादं कदुअ उवत्थिदे अद्धरत्ते ण जाणीअदि कहिं णीदेत्ति ।

वसन्तक (सोद्वेगम्)—हा भोदि साअरिए ! हा असामाण्णरूवसोहे ! हा मिदुभासिणि । अदिणिग्घिणं दाणिं देवीए किदम् । तदो तदो ।

सुसंगता—एसा रअणमाला ताए जीविदणिरासाए अज्जवसन्तअस्स हत्थे पडिवादेसित्ति भणिअ मम हत्थे समप्पिदा । ता णं गेण्हदु अज्जो एदम् ।

वसन्तक (सास्त्रं सकरुणं कर्णौ पिधाय)—भोदि णं मम ईदिसे पत्थावे एदं घेत्तुं हत्थो पसरदि । (इत्युभौ रुदतः) ।

सुसंगता (अञ्जलिं बद्ध्वा)—ताए एव्व अणुग्गहं करन्तो अङ्गीकरेदु एदं अज्जो ।

वसन्तक (विचिन्त्य)—अहवा । उवणेहि । जेण इमाए ज्जेव्व साअरिआ विरहक्कुण्ठिदं पिअवअस्सं विणोदेसि ।

(सुसंगता वसन्तकस्य हस्ते रत्नमालां ददाति) ।

बसन्तक (गृहीत्वा निरूप्य सविस्मयम्)—भोदि कुदो उण ईदिसस्स अलंकारस्स समागमो ।

सुसंगता—अज्ज मएवि सा कोदूहलेण पुच्छिदा आसि ।

बसन्तक—तदा ताए किं भणिदं ।

सुसंगता—तदो सा उद्धं पेक्खिअ दीहं णिस्ससिअ, सुसंगदे, किं दाणिं तुह इमाए कधाए त्ति भणिअ रोदिदुं पउत्ता ।

बसन्तक—णं कधिदं एव्व ताए । सामण्णदुल्लहेण इमिणा परिच्छदेण सव्वधा महाभिजणसमुप्पण्णाए होदव्वं । सुसंगदे । पिअवअस्सो दाणिं कहिं ।

सुसंगता—अज्ज एसो क्खु भट्टा देवी भवणदो णिक्कमिअ फडिअसिलामण्डवं गदो । ता गच्छदु अज्जो । अहं वि देवीए वासवदत्ताए परिचारिणी भविस्सं ।

[Śrī Harṣa]

---

27. कर्पूरमञ्जरी (Act III)

ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च

राजा । (ताम् अनुसन्धाय)

दूरे किज्जदु चम्पअस्स कलिआ कज्जं हलिद्दीएँ किं
  ओल्लोल्लाइ वि कञ्चणेण गणणा का णाम जच्चेण-वि ।
लावण्णस्स णउग्गदिन्दुमहुरच्छाअस्स तिस्सा पुरो
  पच्छग्गेहि-वि केसरस्स कुसुमुक्केरेहिं किं कारणं ॥१॥

अवि-अ

मरगअमणिगुच्छा हारलट्ठि-व्व तारा
  भमरकवलिअन्ता मालईमालिअ-व्व
रहसवलिअकण्ठी तीएँ दिट्ठी वरिट्ठा
  सवणपहणिविट्ठा माणसं मे पइट्ठा ॥२॥

विदूषकः । भो वअस्स कि तुवं भज्जाजिदो पइ-व्व किं-पि किं-पि कुरुकुराअन्तो चिट्ठसि ।

राजा । वअस्स पिअं सुविणअं दिट्ठं । तं अणुसन्धामि ।

विदूषकः । ता कीदिसं तं कधेदु पिअवअस्सो ।

राजा ।

जाणे पङ्करुहाणणा सुविणए मं केलिसज्जागदं
  कन्दोट्टेण तडत्ति ताडिदुमणा हत्थन्तरे संठिदा ।
ता कोड्डेण मए-वि झत्ति गहिदा ढिल्लं वरिल्लञ्चले
  तं मोत्तूण गदं च तीएँ सहसा णट्ठा-खु णिद्दा-वि मे ॥३॥

विदूषकः । (स्वागतम) भोदु एवं दाव । (प्रकाशम्) भो वअस्स अज्ज मए वि सुविणअं दिट्ठं ।

राजा । (सप्रत्याशम्) ता कहिज्जदु कीदिसं तं सुविणअं ।

विदूषकः । अज्ज सुविणए सुरसरिसोत्ते सुत्तो-म्हि ।

राजा । तदो तदो ।

विदूषकः । ता हरसिरोवरि दिण्णलीलावआए गङ्गाए पक्खालिदो-म्हि तोएण ।

राजा । तदो तदो ।

विदूषकः । तदो सरअसमअवरिसिणा जलहरेण जहिच्छं पीदो-म्हि ।

राजा । अच्छरिअं अच्छरिअं । तदो तदो ।

विदूषकः । तदो चित्ताणक्खत्तगदे भअवदि मत्तण्डे तम्बवण्णीणदीसंगमे समुद्दं गदो सो महामेहो । जाणे अहं-पि तस्स गब्भठिदो, गच्छामि ।

राजा । तदो तदो ।

विदूषकः । तहो तहिं सो थूलजलबिन्दूहिं वरिसिदुं पअट्टो । अहं-च रअणाअरसुत्तिहिं मुत्तासुत्तिणामधेआहिं तो समुप्फाडिअ जलबिन्दूहिं पीदो । ताणं-च दसमासप्पमाणो मुक्काहलो भविअ गब्भे संठिदो ।

राजा । तदो तदो ।

विदूषकः ।

तदो चउस्सट्ठिसु सुत्तिसु ट्ठिदो घणम्बुबिन्दू जिदवंसरोअग्गो ।
सुवत्तुलं णिच्चलमच्छमुज्जलं कमेण पत्तो णवमोत्तिअत्तणं ॥४॥
तदो सो-हं अत्ताणं ताणं गब्भगदं मुत्ताहलत्तणेण मण्णेमि ।

राजा । तदो तदो ।

विदूषकः । तदो परिणदिकाले समुद्दाओ कड्ढिदाओ ताओ सुत्तिओ फाडिदाओ । अहं चदुस्सट्ठिमुत्ताहलत्तणं गदो ठिदो । कीदो च एक्केण सेट्ठिणा सुवण्णलक्खं देइअ ।

राजा । अहो विचित्तदा सुविणअस्स । तदो तदो ।

विदूषकः । तदो तेण आणिअ वेअडिअं विद्धाविदा मोत्तिआ । मम-वि ईसीसि वेअणा ससुप्पण्णा ।

राजा । तदो तदो ।

विदूषकः ।

तेणं च्चं मुत्ताहलमण्डलेणं एक्केक्कदाए दसमासिएणं ।
एक्कावली लट्ठिकमेण गुच्छा सा संठिदा कोडिसुवण्णमुल्ला ॥५॥

राजा । तदो तदो ।

विदूषकः । तदो तं करण्डिआए कदुअ साअरदत्तो गदो पञ्चालाहिवस्स सिरिवज्जाउहस्स णअरं कण्णउज्जं णाम । तदो सा किक्किणीदा कोडीए सुवण्णस्स ।

राजा । तदो तदो ।

विदूषकः । तदो-अ

दट्ठूण थोरत्थणतुङ्गिमाणं एक्कावलीए तह चङ्गिमाणं ।
सा तेण दिण्णा दइआएॅ कण्ठे रज्जन्ति छेआ समसंगमम्मि ॥६॥

अवि-अ

णहवहलिदजोण्हाणिब्भरे रत्तिमज्झे
कुसुमसरपहारत्तासससंमीलिदाणं ।
णिहुवणपरिरम्भे णिब्भरुत्तुङ्गपीण-
त्थणकलसणिवेसा पीडिदो-हं विवुद्धो ॥७॥

राजा । (किञ्चिद् विहस्य विचिन्त्य)

सुविणअमेणमसच्चं तं दिट्ठं मेणुसन्धमाणस्य ।
पडिसुविणएण तस्स विणिवारणं तुह अभिप्पाओ ॥८॥

[Rāja Śekhara]

---

28. गउडवहो (Canto I Verses 62-78)

इह ते जयन्ति कइणो जयमिणयो जाण सयल-परिणामं ।
वायासु ठियं दीसइ अमोय घणं व तुच्छं व ।।६२।।
निय आएच्चिय वायाएं अत्तगो गारवं निवेसन्ता ।
जे एन्ति पसंसं चिय जयन्ति इह ते महा-कइणो ।।६३।।
दोग्गच्चम्मिवि सोक्खाइं ताण विहवेवि होन्ति दुक्खाइं ।
कव्व-परमत्थ-रसियाइं जाण जायन्ति हिययाइं ।।६४।।
उम्मिल्लइ लायण्णं पयय-च्छायाएं सक्कयवयाणं ।
सक्कय-सक्कारुक्करिसणेण पययस्सवि पहावो ।।६५।।
ठियमठियंव दीसइ अठियंपि परिट्ठियंव पडिहाइ ।
जह-संठियं च दीसइ सुकईण इमाओ पयईओ ।।६६।।
विणय-गुणो दण्डाडम्बरो य मण्डन्ति जह णरिन्द-पसारे ।
तह टंकारो महुरत्तणं च वाय पसाहेन्ति ।।६७।।
सोहेइ सुहावेइ य उवहुज्जन्तो सवोवि छच्छीए ।
देवी सरस्सई उण असमग्गा किंपि विणडेइ ।।६८।।
महुमह-वियय-पउत्ता वाया कह णाम मउलउ इमम्मि ।
पढम-कुसुमाहि तलिणं पच्छा-कुसुमं वणा-लयाण ।।६९।।
लग्गिहिइ ण वा सुयणे वयणिज्जं दुज्जणेहिं भण्णन्तं ।
ताणं पुण तं सुयणाववाय-दोसेण संवडइ ।।७०।।
पर-गुण-परिहार-परंपराएं तह तेह गुणण्णुया जाया ।
जाया तुहिंचिय जह गुणेहिं गुणिणो परंपिसुणा ।।७१।।
जं निम्मलावि खिज्जन्ति हन्त विमलेहि सज्जण-गुणेहिं ।
तं सरिसं ससि-यर-कारणाएं करि-दन्त-वियणाए ।।७२।।

जाण असमेहिं विहिया जायइ णिन्दा समा सलाहावि ।
णिन्दावि तेहिं विहिया ण ताण मण्णे किलामेइ ॥७३॥
णन्दन्तु णियय-गुण-गारवम्मि अदिट्ठ-पर मुह-च्छाया ।
गरुया स-सील-दोलायमाणा-पर दिट्ठ-मुह-राया ॥७४॥
बहुओ सामण्ण-मइत्तणेण ताणं परिग्गहे लोओ ।
कामं गया पसिद्धिं सामण्ण कई अउच्चेय ॥७५॥
हरइ अणूवि पर-गुणो गरुयम्मिवि णिय-गुणे न संतोसो ।
सीलस्य विवेअस्स य सारमिणं एत्तिअंचेअ ॥७६॥
इयरेवि फुरन्ति गुणा गुरूण पढेमं कउत्तमासंगा ।
अग्गो सेलग्ग-गया इन्दु-मऊहा इह महीए ॥७७॥
णिव्वाडन्ताण सिवं सयलंचिय सिवयरं तहा ताण ।
निव्वडइ किंपि जह तेवि अप्पणा विम्हयमुवेन्ति ॥७८॥

[Vākpati Rāja]

---

29. मृच्छकटिकम् (Act VI)

(ततः प्रविशति चेटी।

चेटी—कधं अज्ज वि अज्जआ ण विवुज्झदि ?। भोदु, पविसिअ पडिबोधइस्सं। (इति नाट्येन परिक्रामति)

(ततः प्रविशत्याच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना)

चेटी—(निरूप्य) उत्थेदु उत्थेदु अज्जआ। पभादं संवुत्तं।

वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य) कधं रत्ति ज्जेव्व पभादं संवुत्तं ?।

चेटी—अम्हाणं एसो पभादो। अज्जआए उण रत्ति ज्जेव्व।

वसन्तसेना—हञ्जे ! कहिं उण तुम्हाणं जूदिअरो ?

चेटी—अज्जए ! वड्ढमाणअं समादिसिअ पुप्फकरंडअं जिण्णुज्जाणं गदो अज्जचारुदत्तो।

वसन्तसेना—किं समादिसिअ ?।

चेटी—जोएहि रत्तीए पवहणं, वसन्तसेना गच्छदुत्ति।

वसन्तसेना—हञ्जे ! कहिं मए गंतव्वं ?।

चेटी—अज्जए ! जहिं चारुदत्तो।

वसन्तसेना—(चेटी परिष्वज्य) हञ्जे ! सुट्ठु ण णिज्झाइदो रत्तीए, ता अज्ज पच्चक्खं पेक्खिस्सं। हञ्जे ! किं पविट्ठा अहं इह अब्भंतरचदुस्सालअं ?।

चेटी—ण केवलं अब्भंतरचदुस्सालअं, सव्वजणस्स वि हिअअं पविट्ठा।

वसन्तसेना—अवि संतप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो ?।

चेटी—संतप्पिस्सदि।

वसन्तसेना—कदा ?।

चेटी—जदो अज्जआ गमिस्सदि ।

वसन्तसेना—तदो मए पढमं संतप्पिदव्वं । (सानुनयम्) हञ्जे ! गेण्ह एदं रअणावलिं । मम बहिणिआए अज्जाधूदाए गदुअ समप्पेहि । भणिदव्वं च—'अहं सिरिचारुदत्तस्स गुणणिज्जिदा दासी, तदा तुम्हाणं पि । ता एसा तुह ज्जेव्व कंठाहरणं होदु रअणावली' ।

चेटी—अज्जए ! कुपिस्सदि चारुदत्तो अज्जाए दाव ।

वसन्तसेना—गच्छ; ण कुपिस्सदि ।

चेटी—(गृहीत्वा) जं आणवेदि (इति निष्क्रम्य, पुनः प्रविशति) अज्जए ! भणादि अज्जा धूदा—'अज्जउत्तेण तुम्हाणं पसादीकिदा; ण जुत्तं मम एदं गेण्हिदुं । अज्जउत्तो ज्जेव्व मम आहरणविसेसो त्ति जाणादु भोदी' ।

(ततः प्रविशति दारकं गृहीत्वा रदनिका)

रदनिका—एहि वच्छ ! सअडिआए कीलम्ह ।

दारकः—(सकरुणम्) रदणिए ! किं मम एदाए मट्टिआसअडिआए ? । तं ज्जेव सोवण्णसअडिअं देहि ।

रदनिका—(सनिर्वेदं निःश्वस्य) जाद ! कुदो अम्हाणं सुवण्णववहारो ? । तादस्स पुणो वि रिद्धीए सुवण्णसअडिआए कीलिस्ससि । ता जाव विणोदेमि णं । अज्जआवसंतसेणाए समीवं उपसप्पिस्सं । (उपसृत्य) अज्जए ! पणमामि ।

वसन्तसेना—रदणिए ! साअदं दे; कस्स उण अअं दारओ ? अणलंकिदसरीरो वि चंदमुहो आणंदेदि मम हिअअं ।

रदनिका—एसो खु अज्जचारुदत्तस्स पुत्तो रोहसेणो णाम ।

वसन्तसेना—(बाहू प्रसार्य) एहि मे पुत्तअ ! आलिंग । (इत्यङ्क उपवेश्य) अणुकिदं अणेण पिदुणो रूवं ।

रदनिका—ण केवलं रूवं, सीलं पि तक्केमि । एदिणा अज्जचारुदत्तो अत्ताणअं विणोदेदि ।

वसन्तसेना—अध किंणिमित्तं एसो रोअदि ?।

रदनिका—एदिणा पडिवेसिअगहवइदारअकेरिआए सुवण्ण-सअडिआए कीलिदं। तेण अ सा णीदा। तदो उण तं मग्गंतस्स मए इअं मट्टिआसअडिआ कदुअ दिण्णा। तदो भणादि—'रदणिए! किं मम एदाए मट्टिआसअडिआए?।' तं ज्जेव्व सोवण्णसअडिअं देहि' त्ति!

वसन्तसेना—हद्धी हद्धी; अअं पि णाम परसंपत्तीए संतप्पदि। भअवं कअंत! पोक्खरवत्तपडिदजलविंदुसरिसेहिं कीलसि तुमं पुरिसभाअधेएहि। (इति सास्रा) जाद! मा रोद। सुवण्णस-अडिआए कीलिस्ससि।

दारकः—रदणिए! का एसा ?।

वसन्तसेना—दे पिदुणो गुणणिज्जिदा दासी।

रदनिका—जाद! अज्जआ दे जणणी भोदि।

दारकः—रदणिए! अलिअं तुमं भणासि; जइ अम्हाणं अज्जआ जणणी, ता कीस अलंकिदा ?।

वसन्तसेना—जाद! मुद्धेण मुहेण अदिकरुणं मंतेसि। (नाट्येनाभरणान्यवतार्य रुदती) एसा दाणि दे जणणी संवुत्ता; ता गेण्ह एदं अलंकारअं, सोवण्णसअडिअं घडावेहि।

दारकः—अवेहि, ण गेण्हिस्सं; रोदसि तुमं।

वसन्तसेना—(अश्रूणि प्रमृज्य) जाद ण रोदिस्सं। गच्छ, कील। (अलंकारैर्मृच्छकटिकां पूरयित्वा) जाद! कारेहि सोवण्णसअडिअं।

(इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका)

(प्रविश्य प्रवहणाधिरूढः)

चेटः—लदणिए लदणिए! णिवेदेहि अज्जआए वशंदशेणाए—'ओहालिअं पक्खदुआलए शज्जं पवहणं चिट्ठदि'।

(प्रविश्य)

रदनिका—अज्जए ! एसो वड्ढमाणओ विण्णवेदि—'पक्खदुआरए सज्जं पवहणं' त्ति।

वसन्तसेना—हञ्जे ! चिट्ठदु मुहुत्तअं; जाव अहं अत्ताणअं पसाधेमि।

रदनिका—(निष्क्रम्य) वड्ढमाणआ ! चिट्ठ मुहुत्तअं; जाव अज्जआ अत्ताणअं पसाधेदि।

चेटः—ही ही भो, मए वि जाणत्थलके विशुमलिदे। ता जाव गेण्हिअ आअच्छामि। एदे णश्शालज्जुकड्डुआ बइल्ला। भोदु, पवहणेण ज्जेव गदागदिं कलिश्शं। (इति निष्क्रान्तश्चेटः)

वसन्तसेना—हञ्जे ! उवणेहि मे पसाहणं। अत्ताअं पसाधइस्सं। (इति प्रसाधयन्ती स्थिता)

(प्रविश्य प्रवहणाधिरूढः)

स्थावरश्चेटः—आणत्तम्हि लाअशालअशंठाणेण—'थावलआ ! पवहणं गेण्हिअ पुष्फकलंडअं जिण्णुज्जाणं तुलिदं आअच्छेहि' त्ति। भोदु, तहिं ज्जेव गच्छामि। वहध बइल्ला ! वहध। (परिक्रम्यावलोक्य च) कधं गामशअलेहिं लुद्धे मग्गे ?। किं दाणिं एत्थ कलइश्शं ?। (साटोपम्) अले ले, ओशलध ओशलध। (आकर्ण्य) किं भणाध—'एशे कश्शकेलके पवहणे' त्ति ?। एशे लाअशालअशंठाणकेलके पवहणे त्ति। ता शिग्घं ओशलध। (अवलोक्य) कधं एशे अवले शहिअं विअ मं पेक्खिअ शहश ज्जेव जूदपलाइदे विअ जूदिअले ओहालिअ अत्ताणअं अण्णदो अवक्कंते ?। ता को उण एशे ? अधवा किं मम एदिणा ? तुलिदं गमिश्शं। अले ले गामलुआ ! ओशलध ओशलध। (आकर्ण्य) किं भणाध—'मुहुत्तअं चिट्ठ, चक्कपलिवट्टिं देहि' त्ति ? अले ले, लाअशालअशंठाणकेलके हग्गे शूले चक्कपलिवट्टिं दइश्शं। अधवा एशे एआई तवश्शी। ता एव्वं कलेमि। एदं पवहणं अज्जचालु-

दत्तश्श रुक्खवाडिआए पक्खदुआलए *थावेमि। (इति प्रवहणं संस्थाप्य) एशे म्हि आअदे। (इति निष्क्रान्तः)

चेटी—अज्जए! णेमिसद्दो विअ सुणीअदि। ता आअदो पवहणो।

वसन्तसेना—हञ्जे! गच्छ तुवरदि मे हिअअं; ता आदेसेति पक्खदुआलअं।

चेटी—एदु एदु अज्जआ।

वसन्तसेना—(परिक्रम्य) हञ्जे! वीसम तुमं।

चेटी—जं अज्जआ आणवेदि। (इति निष्क्रान्ता)

वसन्तसेना—(दक्षिणाक्षिस्पन्दं सूचयित्वा, प्रवहणमधिरुह्य च) किं ण्णेदं फुरदि दाहिणं लोअणं? अधवा चारुदत्तस्स ज्जेव दंसणं अणिमित्तं पमज्जइस्सदि।

(प्रविश्य)

स्थावरकश्चेटः—ओशालिदा मए शअडा। ता जाव गच्छामि। (इति नाट्येनाधिरुह्य चालयित्वा, स्वगतम्) भालिके पवहणे। अधवा चक्कपलिवट्टिआए पलिश्शंतश्श भालिके पवहणे पडिभाशेदि। भोदु, गमिश्शं। जाध गोणा! जाध।

(नेपथ्ये)

अरे रे दोवारिआ! अप्पमत्ता सएसु सएसु गुम्मट्ठाणेसु होध। एसो अज्ज गोवालदारओ गुत्तिअं भंजिअ गुत्तिवालअं वावादिअ बंधणं भेदिअ परिब्भट्ठो अवक्कमदि, ता गेण्हध गेण्हध।

(प्रविश्यापटीपेक्षेण संभ्रान्त एकचरणलग्ननिगडोऽवगुण्ठित आर्यकः परिक्रामति)

चेटः—(स्वगतम्) महंते णअलीए शंभमे उप्पण्णे। ता तुलिदं तुलिदं गमिश्शं।

(इति निष्क्रान्तः) [Śūdraka]

---

30. अपभ्रंशमुक्तकसंग्रहः

जे महु दिण्णा दिअहडा दइएँ पवसन्तेण ।
ताण गणन्तिएँ अङ्गुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥१॥

सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं ।
सामि सुभिच्चु वि परिहरइ संमाणेइ खलाइं ॥२॥

जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्सु ।
तसु हउँ कलि-जुगि दुल्लहहो बलि किज्जउँ सुअणस्सु ॥३॥

अग्गिएँ उण्हउ होइ जगु वाएँ सीअलु तेवँ ।
जो पुणु अग्गि सीअला तसु उण्हत्तणु केवँ ॥४॥

जिवँ जिवँ वंकिम लोअणहं णिरु सामलि सिक्खेइ ।
तिवँ तिवँ वम्महु निअय-सर खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥५॥

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु ।
लज्जेज्जन्तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एन्तु ॥६॥

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहस त्ति ।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तड त्ति ॥७॥

एक्कहिं अक्खिहिं सावणु अन्नहिं भद्दवउ
माहउ महिअल-सत्थरि गण्ड-त्थलें सरउ ।
अङ्गिहिं गिम्ह सुहच्छीतिल-वणि मग्गसिरु
तहें मुद्धहें मुह-पङ्कइ आवासिउ सिसिरु ॥७॥

जर पुच्छह घर वड्डाइं तो वड्डा घर ओइ ।
विहलिअ-जण-अब्भुद्धरणु कन्तु कुडीरइ जोइ ॥८॥

अम्हे थोवा रिउ बहुअ कायर एम्व भणन्ति ।
मुद्धि निहालहि गयण-यलु कइ जण जोण्ह करन्ति ॥९॥

अम्बणु लाइवि जे गया पहिअ पराया के वि ।
अवस न धुअहिं सुअक्खिअहिं जिवँ अम्हइँ तिवँ ते वि ॥१०॥
महु कन्तहों बे दोसडा हेल्लि म झङ्खहि आलु ।
देन्तहों होइं पर उव्वरिअ जुज्झन्तहों करवालु ॥११॥
जइ भग्गा पारकडा तो सहि मज्झु पिएण ।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण ॥१२॥
बप्पीहा पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास ।
तुह जलि महु पुणु वल्लहइ बिहुँ वि न पूरिअ आस ॥१३॥
बलि-अब्भत्थणि महु-महणु लहुईहूआ सोइ ।
जइ इच्छहु वड्डत्तणउँ देहु म मग्गहु कोइ ॥१४॥
सन्ता भोग जु परिहरइ तसु कन्तहों बलि कीसु ।
तसु दइवेण वि मुण्डियउँ जसु खल्लिहडउँ सीसु ॥१५॥
पुत्ते जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण ।
जा बप्पीकी भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण ॥१६॥
जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिआ कुड्ड करीसु ।
पाणिउ नवइ सरावि जिवँ सव्वङ्गे पइसीसु ॥१७॥
विप्पिअ-आरउ जइ वि पिउ तो वि तं आणहि अज्जु ।
अग्गिण दड्ढा जइ वि घरु तो तें अग्गिं कज्जु ॥१८॥

—[Collected by Hemachandra]

31. रावणवहो (Canto VII)

अह ते विक्कमणिहसं दहवअणपआवलङ्घणग्गक्खन्धम् ।
आढन्ता किरएउं सासअरामजसलच्छणं सेउवहम् ॥१॥
णवरि अ महिअलणरिआ मुक्का उअहिम्मि वाणरेहिं महिहरा ।
आइवराहभुएहिं व पलउव्वहणएल्लिआ महिअलद्धन्ता ॥२॥
णिवडन्तम्मि ण दिट्ठो दूरोवइअम्मि कम्पिओ गिरिणिवहे ।
खणपडिअम्मि विलुलिओ कत्थमिअम्मि परिवड्ढिओ सलिलणिही॥३॥
णिहउव्वत्तजलअरं कड्ढिअकाणणभमन्तभमिरुच्छङ्गम् ।
जाअं कलुसच्छाअं पढमुच्छलि आगअं महोअहिसलिलम् ॥४॥
सलिलत्थमिअमहिहरो पुणो वि अदिट्ठमिलिअगिरिसंघाओ ।
तह घडिअपव्वओ विअ दीसइ णहसाअरन्तरालुद्देसो ॥५॥
जणिअं पडिवक्खभअं तुलिआ सेला धुओ कईहिं समुद्दो ।
ण हु णवर हिअअसारा आरम्भा वि गरुआ महालक्खाणम् ॥६॥
जो दीसइ धरणिहरो णज्जइ एएण वज्झइ त्ति समुद्दो ।
उअहिम्मि उण वडन्ता कत्थ गअ त्ति सलिले ण णज्जन्ति धरा ॥७॥
सअलमहिवेढमिअडो सिहरसहस्सपडिरुद्धरइरहमग्गो ।
इअ तुङ्गो वि महिहरो तिमिङ्गिलस्स वअणे तणं व पणट्ठो ॥८॥
पव्वअसिहरुच्छित्तं धावइ जं जं जलं णहङ्गणहुत्तम् ।
तं तं रअणेहिं समं दीसइ णक्खत्तमण्डलं व पडन्तम् ॥९॥
वाणरवेआइद्धा पिहुलवलन्तणिअओज्झरपरिक्खित्ता ।
अप्पत्त च्चिअ उअहि भमन्ति आवत्तमण्डलेसु व सेला ॥१०॥
खणमेलिआपविद्धो सिहरन्तरणित्तरित्तवाणरलोओ ।
पच्छा पडइ समुद्दे अण्णो मिलइ पढमं णहे गिरिणिवहो ॥११॥

दीहा वलन्तविअणा रसन्ति उवहिम्मि मारुअभरिज्जन्ता ।
पाआलोअरगहिरा रहसोविद्धाण महिहराण गइवहा ॥१२॥
उक्खित्तविमुक्काइं णहम्मि एक्केकमावडणभिण्णाइं ।
वज्जभउव्विण्णाइं व पडन्ति रअणाअरे गिरिसहस्साइं ॥१३॥
भिण्णसिलाअलसिहरा णिअअदुमोसरिअकुसुमरअधूसरिआ ।
पढमं पडन्ति सेला पच्छा वाउद्धुआ महाणइसोत्ता ॥१४॥
णिम्मलसलिलब्भन्तरविहत्तदीसन्तविसमगइसंचारा ।
णस्सन्ति णिब्बलट्ठिअपवंगमालोइआ चिरेण महिहरा ॥१५॥
फेणकुसुमन्तरुत्तिण्णकेसराआरवेविरमऊहाइं ।
सूएन्ति पवत्ताइं मूलुक्खुहिअं महोअहिं रअणाइं ॥१६॥
विहुणइ वेलं व महिं भिन्दइ असअं व धरणिधरसंघाअम् ।
गेण्हइ भअं व गअणं मुअइ सहावं व साअरो पाआलम् ॥१७॥
पल्हत्थन्ति वलन्ता चलन्ता चलविडवन्तरणिअत्ततरुपारोहा ।
मूलुण्णामिअजलआ अहोमुहन्दोलिओज्झरा धरणिहरा ॥१८॥
अट्ठिअपडन्तमहिहरदूरट्ठिअजलरअन्धआरत्थमिए ।
साहइ णवर पडन्ते पक्खुहिअसमुद्दपडिरओ धरणिहरे ॥१९॥
दरधोअकेसरसडा पाआलुम्हगिरिधाउकद्दमिअमुहा ।
पडिसक्कन्ति पवंगा पल्हत्थिअमहिहरूससन्तक्खन्धा ॥२०॥
विअलन्तोज्झरलहुआ पवणविहुव्वन्तपाअवुद्धपइण्णा ।
पवएहिं उद्धमुक्का सिहरेहिं पडन्ति साअरम्हि महिहरा ॥२१॥
अत्थमिअसेलमग्गा भिण्णणिअत्तन्तसलिलपुञ्जिअकुसुमा ।
होन्ति हरिआलकविला दाणसुअन्धुप्पवन्तगअदुमभङ्गा ॥२२॥
अत्थाअन्ति सरोसा सलिलद्दरत्थमिअसेलसिहरावडिआ ।
एक्कावत्तवलन्ता धुवआतम्बलोअणा वणमहिसा ॥२३॥
भिण्णसिलिअं पि भिज्जइ पुणो वि एक्कक्कमावलोअणसुहिअम् ।
सेलत्थमणणउण्णअतरङ्गहीरन्तकाअरं हरिणउलम् ॥२४॥

दाढाविभिण्णकुम्भा करिमअराण थिरहत्थकड्ढिज्जन्ता ।
मोत्तागब्भिणसोणिअभरेन्तुमुहकंदरा रसन्ति मिइन्दा ॥२५॥
उव्वत्तिअकरिमअरा पडन्ति पडिअगिरिसंभमुब्भडरोसा ।
ओवइअमअरणिद्दअलुअगत्तावरविसण्ठुला माअङ्गा ॥२६॥
विहुलपवालकिसलअं सेलद्दत्थमिअदरिमुहवलन्तीहिं ।
आवेढपहुप्पन्तं वीईहिं दुमेसु वणलआहिं व भमिअम् ॥२७॥
गिरिणिवहेहि रसन्तं उक्खम्मन्तेति णिवडिएहि अ समअम् ।
धरणीअ साअरस्स अ उग्घाडिज्जइ णिरन्तरं पाआलम् ॥२८॥
वेआविद्धवलन्ता मुहलवलन्तोज्झरावलिपरिक्खित्ता ।
संवेल्लिअघणणिवहा वलिअलआलिङ्गिआ पडन्ति महिहरा ।२९।
एक्कक्कमावडन्ता णिअअभुअक्खेवभिण्णसेलद्धन्ता ।
णिन्ति धुअकेसरसडा गअणुच्छलिअसलिलोत्थआ कइणिवहा।३०।
दीसइ वारंवारं गिरिघाउक्खित्तसलिलरेइअभरिअम् ।
पाआलं' व णहअलं णहविवरं व विअडोअरं पाआलम् ॥३१॥

—[Pravarasena]

॥ शुभमस्तु ॥

पालिसंग्रह

१—मायादेविया सुपिनं

उपोसथङ्गानि <उपवसथ + अङ्गानि = उपवास के नियम
किर <किल
हेट्ठा<*धेस्तात् <अधस्तात् = नीचे
अनोतत्तदहं<अनवतत+ह्रदं = अनवतत नामक सरोवर
पिलन्धापेत्वा√पिलन्ध (<अपिनद्ध)+आप्+अय्+त्वा = पिन्हाकर
निपज्जापेसुं√निपज्ज (<निपद्यते] + आपय् (प्रेरणार्थक) + सु (लुङ् ३।३) = लिटाया
सोण्डाय <शुण्डया = सूँड़ से
कोञ्चनादं<क्रौञ्चनादं = महानाद
पटिसन्धिं<प्रतिसन्धि = गर्भ
पञ्ञापेत्वा<√प्रज्ञा (<पञ्ञ)+आपय्+त्वा = प्रस्तुत करके
सुवण्णरजतपातीहि<सुवर्णरजतपात्रीभिः.
पटिकुज्जेत्वा <प्रतिकुब्ज + अय् (नामधातु) + त्वा = ढँक कर
अज्झावसिस्सति <अध्या+वस्+लृट् ३।१ = रहेगा

२—गोतमस्स उप्पादो

कुलसन्तकं <कुल+सत् (>सन्त)+क (स्वार्थिक) = कुलका
एकफालिफुल्लं = अच्छी तरह फूला हुआ
सुसेदितवेत्तग्गं<सुस्वेदितवेत्राग्रं = तपाये हुए बेत का अग्रभाग
कम्मजवाता<कर्मजवाताः = प्रसववेदना
साणिं <शाणीं = सन का पर्दा

महेसक्खो <महेशाख्यः = बहुत बड़ा, ऐश्वर्यशाली

मक्खिता <म्रक्षिता = लिप्त,

उतुं गाहापेसुं <ऋतुमजीग्रहन् (ग्रह् + आप् + लुङ् ३।३) = स्वस्थता
  प्राप्त कराई

३—महाभिनिक्खमनं

पहिणि <प्र+हि (> हिण)+लुङ् ३।१ (अडागमविरहित) = भेजा

बोधिसत्तरूपसिरिं <बोधिसत्त्वरूपश्रीं = बोधिसत्त्व की रूप-शोभा को

पीतिसोमनस्सजाता <प्रीतिसौमनस्यजाता = प्रीति और सौहार्द से
  भर कर

उदानं <ओदानं <अवदानं = सूक्ति, शिक्षा

छड्डेत्वा <छर्दयित्वा = छोड़ कर

सतसहस्सग्घनकं <सतसहस्र+अर्घनकं = शतसहस्र मूल्यवाले

अभिरमापेन्तियो <अभिरम्+णिच्+ शतृ+द्वितीया बहुव० = मनो-
  रंजन करती हुई

अज्झोत्थरित्वा <अधि+अव् + स्तॄ+ल्यप् (पालि में त्वा) = बिखरा कर

पग्घरितखेला <प्रक्षरितक्ष्वेडाः (क्ष > क्ख > ग्घ) जिनकी थूर इधर-उधर
  गिर रही थी

काकच्छन्तियो <काकथ्यमानाः (कथ्+यङ्लुगन्त+शतृ) = सपने में
  बड़बड़ाती हुई

पकटबीभच्छसंबाधट्ठाना <प्रकटबीभत्ससम्बाधस्थानाः = जिनके
  विद्रूप गुप्तांग दिख रहे थे

भिय्योसोमत्ताय <भूयः (> भुय्य > भिय्य)+सुमात्रया = और अधिक
  मात्रामें

आदित्तगेहसदिसा <आदीप्तगेहसदृशाः = आग लगे घर की तरह

आमक सुसानं <आमकश्मशानम् (*स्वशान) = ऐसा श्मशान जहाँ
  मुर्दे कच्चे ही फेंके गये हों

खायिंसु<अडागम विरहित क्षि+कर्मवाच्य+लुङ् ३।३ नष्ट हो रहे थे
उम्मारे <अव्यु०) = देहली पर
पत्थरित्वा<प्र+स्तृ+त्वा (>ल्यप्) = फैला कर
निरुम्भित्वा = रोक कर
अम्मणभत्तेन <अर्मण ? (एक माप) मात्रेण

४—महापरिनिब्बानं

अतीतसत्थुकं <अतीतशास्तृकं = दिवंगत उपदेष्टा का
विप्पटिसारिनो<विप्रति+सारिणः = प्रतिकूल
गारवेनापि <गौरवेण+अपि = गौरव का ध्यान रख कर
सोतापन्नो <स्रोतः+आपन्नः = संसार के प्रवाह में पड़ा
अविनिपातधम्मो<अविनिपातधर्मः = अनश्वर स्वभाववाला
आकासानञ्चायतनं <आकाश+आनन्त्य+आयतन = आकाशबोध की
तन्मयतावली समाधि दशा
आकिञ्चञ्ञायतनं <अकिञ्चन्य+आयतन = अकिञ्चनता की बोध दशा
नेवसञ्ञानासञ्ञायनं<नैव+संज्ञा+न+असज्ञा+आयतन = ऐसी दशा
जिसमें न तो संज्ञा रहती है, न लुप्त होती है
सञ्ञावेदयितनिरोधं <संज्ञा+वेदित+निरोध = संज्ञा की जानकारी को
निरोध दशा
भिंसनको<भीषणकः = भयंकर
अप्पटिपुग्गलो<अप्रतिपुद्गलः = अप्रतिम व्यक्ति
अनेजो<अनेजः = उद्वेगरहित
अकरी<अ + कृ+लुङ् ३।१ किया

६—सम्मादिट्ठी

येभुय्येन <यत्+भूयस्+तृ०।१

अत्थितं<अस्तितां = अस्ति का भाव, अस्तित्व

नत्थितं<नास्तितां = अनस्तित्व

७—अनत्तवादो

सारणीयं <√ सारि+अनीयर् = रसास्वादपूर्वक

बीतिसारेत्वा <वी+अति+√ सारि+त्वा (ल्यप् के लिए) = करके

समञ्ञा<समज्ञा = पहचान

पञ्ञत्तिवोहारो<प्रज्ञप्ति+व्यवहारः = जानकारी और व्यवहार

चीवरपिण्डपातसेनासनगिलापच्चयभेसज्जपरिक्खारं <चीवर+पिण्ड-
पात + शयन+आसन+ग्लान+ प्रत्यय+भैषज्य+परिष्कारं = वस्त्र,
भोजन, शयन, रोग होने पर दवा आदिका विधान।

पञ्चानन्तरियकम्मं <पञ्च+आनन्तरिय+कर्म = पाँच ऐसे कर्म जिनका
प्रायश्चित्त हो सकता है।

उपसम्पदा = ज्ञान

नहारु = स्नायु

अट्ठि<अस्थि

अट्ठिमिञ्जा <अस्थि+मज्जा

वक्कं <वृक्कं

यकनं <यकृत्

किलोमकं <क्लोमकं = फुफ्फुसका आवरण

पिहकं <प्लीहकं

पप्फासं <फुफ्फुसं = फेफड़ा

सेम्हं<श्लेष्म

पुब्बो <पूय = पीब

खत्तियसुखुमालो<क्षत्रिय+सुकुमार

उण्हाय <उष्णायां

सक्खरकठलवालिका<शर्कर+कठलबालुका = खरी और रवादार बालू

उदाहु <उताहो

सम्मुतीति <संवृतः+इति

पञ्हपटिभानानि <प्रश्न+प्रतिभानानि = प्रश्नके समाधान

८—धम्मपदसंगहो

अहेठयं <अहेडयत् = छीना

पलेति <परैति = चला जाता है

विस्सं <वेश्यं = वेश-प्रधान

बाहित्वा <बहिर्+नामधातु+त्त्वा = ऊपर उठकर

धमनिसंथतं <धमनी+संस्तृतं = जिसकी नसें साफ-साफ दिखती हों

झायन्तं <ध्यायन्तं

अतिधोनचारिनं <अति+धौत+चारिणं = अशुचि कर्म करनेवाले को

सज्जु <सद्यः

नेत्तिका <नेतृकाः = नालियाँ

उसुकारा <इषुकाराः = बाण बनानेवाले

तेजनं = बाण

समीरति <समीर्यते = विचलित किया जाता है

समिञ्जन्ति <सम्+ऋञ्जन्ति =

अयोगुला <अयः+गुटाः

कलिङ्गरं <(अव्युत्पन्न) = लकड़ी का टुकड़ा

रोगनिड्डं <रोगनीडम्

सन्तस्स <श्रान्तस्य

९—लंकाविजयो

सत्तामच्चसतानुगो <सप्त+अमात्य+शत+अनुगः = सात सहस्र अमात्यों द्वारा अनुगत

देवस्सुप्पलवण्णस्स <देवस्य + उत्पलवर्णस्य

सोणिरूपेन<शुनीरूपेण

सुनखा<शुनकाः

मुलालयो <मृणाली

परित्तसुत्ततेजेन <परित्त+सूक्त+तेजसा

सुरुङ्गायं <सुरङ्गायां = सुरङ्गमें

निच्छितो<निश्चितः

करिस्सामि त्थिकिच्चञ्च> करिष्यामि+स्त्री+कृत्यं+च

छाता ति = भूखे

मापेसि <अमीमिपत् = तैयार किया

सक्खा <शक्या

आदिण्णवा <आदीर्णवान् = चीर डाला

१०—निग्रोधमिगजातको

मिगवधपसुतो <मृगवध+प्रसृतः = मृगवध में लगा हुआ

देवसिकं <दैवसिकं = नित्य

मिगवं <मृगयां

निवापं <चारा

नियादेमाति <निर्यातयामः+इति

निवापतिनं <निवाप+तृणम्

नीहरित्वा <निर्हृत्य

विज्झित्वा <विध्य+क्त्वा = बींधकर

एकंसेन<एकांशेन <एकबारगी

धम्मगण्डिकट्ठाने<धर्मगण्डिकास्थाने = वधस्थान

परिसाय <परिषा(<परिषद)+ष०।१

खन्तिमेत्तानुद्दयसम्पन्नो <क्षान्तिमैत्रानुदयसम्पन्न = क्षमा, मैत्री और दया युक्त

दम्मी <दद्मि

पुत्तधीतासु<पुत्र+धीता (<दुहितृ)
ओवादं <अववादं = शिक्षा
पुप्फकण्णिकसदिसं <पुष्पकर्णिकसदृशं
पण्णसञ्ञं <पर्णसंज्ञा = पत्तियों का निशान
वतिं <वृतिं = घेरा

११—जवसकुणजातको

रुक्खकोट्टकसकुणो <वृक्षकोट्टकशकुनिः
उद्धुमायि <उद् + √ ध्मा + भाववाच्य + लुङ् ३।१=उदध्मायि=सूज गया
आचिक्खि<आ + √ ख्या + लुङ् ३।१ = आख्यत्
पिदहितुं<पिधातुं
वीमंसिस्सामि <मीमांसिष्ये
अकरम्हसे < √ कृ + लुङ् + १।३
अहुवम्हसे< √ भू + लुङ् + १।३
अकतञ्ञुं <अकृतज्ञं
कतञ्ञुता <कृतज्ञता

१२—ससजातको

पण्डुकम्बलसिलासनं<पाण्डुकम्बल शिलासनं
उण्हाकारं <उष्णाकार = प्रज्वलित
थलमुब्भता<स्थलं + उद्भृताः
पातोव <प्रातः + एव = अभी जल्दी ही
मंससूला <मांसशूलौ = मांसके दो पकाये हुए टुकड़े
अम्बपक्कोदकं <आम्रपक्वौदक = पके आम और पानी
पाणातिपातं<प्राणातिपातं = हिंसा
परिच्चजित्वा <परि + √ त्यज् + त्त्वा (ल्यप्के लिए)

पाणका <प्राणकाः = छोटे प्राणी

सकसरीरं <स्वकशरीरं

पति < √पत् + लुङ् + ३।१

पाकटो <प्रकटः

पीलेत्वा <पीडयित्वा

१३—बावेरुजातको

आगतागता = आ आकर

गलपरियोसानं <गल + पर्यवसानं = गलेतक

मूलेन <मूल्येन

अनुपुब्बेन <अनुपूर्वेण = धीरे-धीरे

पटिजग्गिंसु <प्रति + √जागृ + लुङ् ३।३ = पालन किया

अच्छरासद्देन = चुटकीसे

वस्सति <वास्यति

पाणिप्पहारसद्देन = ताली

लाभग्गयसग्गपत्तो <लाभाग्र+यशः+अग्र+प्राप्तः = अग्रलाभ और अग्र-यश पानेवाला

उक्कारभूमियं <उत्कारभूम्यां = धूर पर

सरसम्पन्नो <स्वरसम्पन्नः

पभंकरो <प्रभाकरः

तित्थियानं <तीर्थिकानां = असद्धर्मियों के

अहायथा <अहीयत

१४—सुप्पारक जातको

निय्यामकजेट्ठस्स <नियामक ज्येष्ठस्य = पोतनायक

पासादिको <प्रासादिकः = सौम्य

अच्चयेन <अत्ययेन = मृत्यु से

ञाणसम्पन्नो<ज्ञानसम्पन्न

व्यापत्ति<विपत्ति

लोणजलन्हटानि<लवणजलप्रहतानि = नमकीन जल से नष्ट

अग्घापनियकम्मे<अर्घ + नामधातु + इक (तद्धित)+कर्म+सप्त०।१ = मूल्यांकन के काम में

कालपासाणकूटवण्णं = काज <काल

पच्छावामकधातुको<पाश्चाद्वामकधातुकः = पीछे से बौना

नासक्खि<न + अशकत्

सुसिररुक्खेन<सुषिरवृक्षेण = पोले वृक्षसे

राजुपट्ठानेन<राज+उपस्थानेन = राजा की सेवा से

व्यापज्जति<व्यापद्यते = विपत्ति आती है

पकतिसमुद्दपिट्ठे <प्रकृतिसमुद्रपृष्ठे = प्रकृतिस्थ समुद्र के ऊपर

उम्मुज्जनिमुज्जं <उन्मज्जननिमज्जनं = डूबना-उतराना

संसन्देत्वा<सं + √सन्द् = थाह लेना

वजिरं<वज्रं = हीरा

सचा हं <स+चेत्+अहं = यदि मैं

ओसीदापेस्सन्ती <अव+√सद् (> √सीद्)+णिच्+लट्+३।३

मज्झन्तिकसुरियो<मध्यान्तिक सूर्यः = दुपहर के सूर्य

उस्सन्नं <उत्सन्नं

वेलुवनं <वेणुवन = बाँस के वन

छिन्नतटमहासोब्भो<छिन्नतटमहाश्वभ्रः = ऐसा बड़ा गर्त जिसके किनारे टूट गये हों।

सोतानि <श्रोत्राणि

भिन्तो <भिन्दः

फालेन्तो<स्फालयन्

सुयत मानुसो<श्रूयते+अमानुषः

एकप्पहारेन<एक प्रहारेण = एक दम

अविचिम्हि <अवीचि+स० १ = अवीचि नामक नरक में
सोत्थिभावं <स्वतिभावं = कल्याण
सच्चकिरियं <सत्यक्रियां
सरामि <स्मरामि
विञ्ञुतं <विज्ञतां
सच्चवज्जेन <सत्यवद्येन = सच बोलनेसे
अट्ठूसभमत्तं <अष्ट+वृषभ+मात्र =
मनसाकासि = मन में सोचा
पटिच्चसमुप्पादं = प्रतीत्यसमुत्पादं
सडायतनं = षडायतनं
फस्सो <स्पर्शो
वपयन्ति <व्यपयन्ति

१६—धम्मचक्क-पवत्तन-सुत्त

कामसुखल्लिकानुयोगो <कामसुख+स्वार्थिक लिक प्रत्यय+अनुयोग = कामसुखकी इच्छा करनेवाला
पोथुज्जनिको <पृथक्+जन+इक = पामरजन
अनरियो <अनार्यः
अनत्थसंहितो <अनर्थसंहृतः
अत्तकिलमथानुगो <आत्मक्लमथानुयोगः = अपनेको थकानेवाला
चक्खुकरणी <चक्षुष्करणी = दृष्टि देनेवाली
ञाणकराणी = ज्ञानप्रद
वायामो <व्यायामः = प्रयत्न
सम्मासति <सम्यक् स्मृतिः
पोनोब्भविका <पौनर्भविका = फिर जन्मका कारण बननेवाली
सेय्यथी दं <(तत् सेव्युत्पन्नसः >सो >) से+यथा+इदं

१७—धनिय-सुत्तं

हमस्मि <अहम्+अस्मि

महिया<मह्याः = मही नदीके

समानवासो<अस्+शानच्+वासः

अहितोगिनि <आहितो+अग्निः

पत्थयसी<प्रार्थयसे = चाहो

विवटा <विवृता = खुली

अन्धकमकसा = —मशकाः

विज्जरे <विद्यरे = हैं (विद्यन्ते)

भिसी <बृसी = आसन

सुसंखता <सुसंस्कृता

संवासिया <संवास्या = सहवास के योग्य

अस्सवा<अस्रवा = मदरहित

मनापा<मनस + √आप्+अ+आ

भतिया <भृत्या = नौकरी

वसा<वशा

असम्पवेधी<असम्प्रव्यथिनः = अचल

तिछेत्तुं <अतिच्छेत्तुं = तुड़ाने के लिये

पूतिलतं<पूतिलताम् = पोई की लता

चक्खुम <चक्षुष्मन् = दृष्टिसंपन्न

गोमिको = <गौवाला

पुत्तिमा = पुत्रवाला

उपधी <उपधिः = परिग्रह

१८—मालुङ्क्यपुत्तगाथा

मालुवा = एक लता

पलवती <प्लवते

हुराहुरं <हुरात्+हुरं <असोः असुं = एक जन्म से दूसरे जन्म को

फलमिच्छं <फलं+इच्छन्

जम्मी <जाल्मी

विसत्तिका <विसक्तिका

पोक्खरा <पुष्करात् = कमल से

उसीरत्थो <उशीरार्थः

अब्बहे <आवृहेत् = निकालले

सल्लं <शल्य

१९—महाप्रजापतिगोतमी गाथा

त्यत्थु <ते+अस्तु

फुसितो <√स्पृश्+क्त

अय्यिका <आर्यिका = पितामही (तु० भोजपुरी अइया)

यथाभुच्चं <यथाभूत्यः

पहितत्ते <प्रहितात्मनि

प्राकृतापभ्रंशसंग्रहः

१—अशोकाभिलेखः

आरभित्पा<आ + √लभ् + त्वा

त्रियदसिना<प्रियदर्शिना

समाजो = तमाशा

प्रजूहितव्यम् < √प्र + √हू (जुह्) + तव्य

सूपाथाय<सूपार्थाय = सूप बनानेके लिए

ध्रवो<ध्रुवः = निश्चित

आरभिसरे<आ = रभ् + लृट् + ३।३ (रे—रे)

हिद <*इध

समयस्पि<*समाजस्मिन्

ससुमते<साधुमतः

हंञंति<हन्यन्ते

मजुर<मयूर

तिनि<त्रीणि

खेपिंगलरि-०नामके

२—अशोकस्य भब्राभिलेखः

फासुविहालतं<स्पर्शु (प्राशु) = सुखविहार

आवतके<*यावत्तकः = जितना

हमा<मम

गालवे<*गौरवः

प्रसादे<प्रसादः = प्रसन्नता

सवे<सर्वः

हमियाये<मया = हम<मम

चिलठितिके <चिरस्थितिकः

होसतीति<भविष्यतीति

हकं <अहकं

विनयसमुकसे<विनयसमुत्कर्ष (सिगालोवाद सुत्तंत और सप्पुरिससुत्त)

अलियवसानि <आर्यवंशानि (संगीतसुत्त)

अनागतभयानि<आनेवाले भय (अंगुत्तरनिकाय में ७८ सुत्तनिपात)

मुनिगाथा <(सुत्तनिपात २०६, २२०)

मोनेयसुते<मौनेयसूत्र (इतिवुत्तक ६७, सुत्तनिपात १, १२, ३९)

उपतिसपसिने <उपतिष्य प्रश्नः (विनयपिटक १,३९; सुत्तनिपात ४,१६)

लाघुलोवादे<राहुल + अववादः = राहुल को शिक्षा (मज्झिम निकाय ४१४–४२०)

मुसावादं } <मृषावादं अधिकृत्य
अधिगिच्य }

अभिखिनं<अभीक्ष्ण = बार-बार

भिखुपाये<भिक्षुप्रायः

३—सोहगौराताम्रपत्रम्

सवतियान महमगन ससने (प्राच्य अभिलेखीय प्राकृत दूसरी सदी ई० पूर्व)

दवे कोठगलानि [श्रावस्त्यानां महामार्गाणाम् शासने ··कोष्ठागाराणि]

अतियायिकय<अत्यायिकाय = संकटकी स्थितियाँ

४—हेलियोडोरस्य बेसगराभिलेखः

उपता <उपातात् = समीपसे

चतुदसेंन <चतुर्दशेण
राजेन <राज्येन
बधमानस <वर्धमानस्य
अमुत-पदानि <अमृतपदानि
चाग <त्याग

५—खारवेलस्य हाथागुम्फाभिलेखः

(अभिलेखीय प्राकृत मध्य, ईसा के आसपास)

अइरेण <ऐलेन = इलावंशी
पसथ <प्रशस्त
लेख-रूप-गणना-ववहारविधिविसारदेन <लेखरूपगणनाव्यवहार-
विधिविशारदेन
सव-विजावदातेन <सर्वविद्यावदातेन
वधमानसेसयो <वर्धमानशैशवः
पघमे <प्रथमे
पतिसंखारयति <प्रतिसंस्कारयति
सवूयान-प (टि)-संथपनं <सर्वोद्यानप्रतिसंस्थापन
पनतिसाहि <पञ्चत्रिंशाभिः

६—वकनपतेः मथुराभिलेखः

(कुषाण प्राकृत) मध्य, दूसरी शती ई०

गुर्पये <Gorpaios महीनेमें
अक्षयनीवि <अक्षयनीवी = न्यासनिधि
तुतो <ततः (कदाचित् लिखावटके भ्रमसे)
परिविषितव्यम् <परिवेशितव्यम्
साद्यं <सद्यः+तद्धित् = तुरत का बना

सक्तना <सक्तुना

लवृण<लवण (संस्कृतीकरणकी प्रवृत्ति)

शक्त<*शुक्त(= शुष्क) = सूखा मसाला

हरितकलापक = उड़द या मूँग

अनाधनां<अनाथानां

सरवायि<*सर्वायां

८—कीर्तिशर्मणः पत्रं (नियप्राकृत)

प्रथमदरो <प्रथमतरः

प्रहुड<प्राभृतं = उपहार

प्रहिदेमि <प्रहितः+अस्मि = मैंने भेजा

ञदर्थे<ज्ञातार्थः

पल्लि <बलि

ज़र्वस्पोर <सर्वस्फुरं = पूरी तेजीसे

तोम्मिहि=तोम्मिके साथ

विज़जिदवो<विसर्जितव्यः

परज़<परास = लूट लिया

व्योषिसि<वि+अव्+ √सृज्+ लट्+ २।१ = तुम सौंपोगे

भग्गेन = टुकड़े-टुकड़े करके

किल्मि = विधवा-विवाह

बेभ = बेवा (ईरानी व्युत्पत्ति)

स्पोंर = स्फुरं

तोम्मन = (एक प्रकारके अधिकारी)

विथिष्यतु <कि+√स्था+लट् + लोट् (विस्थिष्यति) = दूर रखा जायगा

रयसछि<राजसाक्षि = राजा द्वारा देखा गया

लिविस्तरंमि<लिपिविस्तरे = ब्यौरे में

इछन्ति <√ अछ + ३।३

शछ्यमि <शक्ष्यामि

लेह्रगज्ञ <लेखहारकस्य

९—राजानुदेशः (निय प्राकृत)

रज्ञकिचज <राजकृत्यस्था

ओसुक <औत्सुक्यं

स्पस <स्पश = पहरा

परिचगेन <परित्यागेन

इंथुअमि = इस प्रकार

महरयज्ञ <महाराजस्य

पदमुलम्मि <पादमूले

अदेहि <अदस् + हिस्पं = वहाँसे

उपदए <उपान्तात्

उपशंगिदव्य <उपशंकितव्यः

रजिजम्न <राज+इप् = राजा की इच्छा में

ओडिदव्य <अव्+√ टि+तव्यत् = छोड़ दी जाने योग्य

द्रम्गघरे = शासनाधिकारी

परिछिनवितांति <परिक्षीणयंति

प्रठ <प्रस्थ

चवल <चपल = शीघ्र

सम्गलिदव्य <सङ्कलितव्य

स्तोर = एक विशेष प्रकार का द्रव्य

चुरोम = एक विशेष प्रकार का द्रव्य

पिचविदेमि <प्रत्यर्पितोऽस्मि = सौंपा है।

१०—अप्रमादरतिः भिक्षुधर्मश्च

(खोतानी प्राकृत)

प्रशजति <प्रशंसति

गरदितु<गर्हितः

ज़ेव<सेवेत

ज़बज़ि<संवसेत्

रोयअ<रोचयेत्

ज़िअ <स्यात्

लोंक-वढणो<लोकवर्धनः

पुवि<पूर्वम्

ओहज़ेदि <अवभासयति

सुरिउ<सूर्य

ज़ेण<स्वेन

नडकर<नलाकरं

स्वदिमद<स्मृतिमत्र

सुजमहिद-ज़गप<सु समाद्रित-संकल्पा

ज़चित<सचित्त

विहथिदि<विहर्षति (विहरिष्यति)

प्रहइ<प्रहाय

जदि-ज़त्शर<जाति संसारं

ठुठदुखसद्<दुःखस्यांतं

भुद्रनु<भद्रं यूह = आपका कल्याण हो

जमकद <समकृताः = एकत्र

सुप्रवेदिदि <सुप्रवेदिते

प्रतअ <प्रातये

ज़लव्हु <सलाभं

नदिमञअ<नातिमन्येत

स्विहआं <स्पृहयन्

षिअ <स्यात्

ज़मधि<समाधि

नधिकछदि <नाधिगच्छति

बहोपुकेण <बहु + औत्सुक्येन

अप्रुघजण-जेविद <अपृथग्जनसेवितं = साधारण जन द्वारा जो सेवित नहीं है।

विश्पशम् <विश्वासं

ञभेदइ<समादाय

ब्रम्म-यियव <ब्रह्मचर्यवान्

ञगइ <संख्याय

पडिविजु <प्रतिविघ्नन्

ञगरवोशमु<संस्कारोपशमम्

११—अहिंसा (अर्धमागधी)

कोहाइमाणं <क्रोधातिमानं

वहाओ <वधात्

सोयं<स्रोतः

उमुग्गा<उन्मग्नाः = डूबनेसे बचाना

१२—महावीरजन्म (अर्धमागधी)

चयं चइत्ता <च्वयं च्वयित्वा

भारहे<भारते

विइक्कंतेहिं <व्यतिक्रान्तैः

उसभदत्तस्स <वृषभदत्तस्य

माहणीए <माहणी+षष्ठी।१ = सम्माननीय

गब्भत्ताए <गर्भत्वा+तृ०।१ = गर्भत्वमें

१३—मूलदेव-कथा (जैन महाराष्ट्री)

तुण्णाओ <तूर्णगः = डाकिया

अद्दावलेवलित्तेन <आर्द्रावलेप लिप्तेन = मलहम—

पलोभेउं <प्रलोभयितुं (तुमुन् त्त्वाके अर्थमें)

पुव्व-नत्थासणे<पूर्वनस्तासने = पहलेसे बाँधे गये आसनपर

अणज्जन्तो<अ + √ज्ञा + कर्मवाच्य + शतृ + प्र०।१ = अज्ञीयमानः

कप्पडिओ <कार्पटिकः = भिखमंगा

चडावियं<देशी धातु √चट् + णिच् + त

पाहुणयस्स<प्राघुणकस्य = पाहुन का

पायसोयं<पादशौचम् = पादप्रक्षालन

छुहामि<*क्षुभामि (क्षियामी) = फेंक दूँ

मारिज्जिहिसि<√मर् + णिच् + कर्मवा०+लट् २।१ = मारे जाओगे

सण्णिओ <संज्ञितः = इशारा किया गया

णस्स <नश्य = भाग जाओ

दवाविओ<दाप्पि+णिच् + क्त= दिलवाया

पुव्वावेइय-लेक्खाणुसारेण<पूर्वावेदित लेख्यानुसारेण = पूर्वलिखित लेखके अनुसार

सूलाए <शूलायां = शूलीपर

१४—कक्कुकाभिलेखः (महाराष्ट्री, पर अर्धमागधीसे प्रभावित) ८६३ ई० का लेख

सुओ<सुतः = पुत्र

चाई<त्यागी

थेओ<स्तोकः = कम

कयं<कृतं

सम्भरिअम्<संस्मृतम्

पया<प्रजाः

उअरोह-राअ-मच्छर-लोहेहिम्पि<उपरोध (अनुचित कृपा) राग मत्सरलोभैरपि

णाय-वज्जिअं<न्यायवर्जितम्

मणयं<मनाग्

दिअवर-दिण्णाणुज्जं <द्विजवरदत्तानुज्ञां

दण्डणिट्ठवणम् <दण्डनिष्ठापनम्

१५—महावीरस्य परिव्रजनम् (अर्धमागधी)

पन्तं <(अव्युत्पन्न) = बासी

आसणगाइं <आसनकानि

लूसिंसु<√ रुष् + लुङ् ३।३

लुक्ख-देशिए<रुक्षदेशीयः = रूखा-सूखा-सा

एलिक्खए <*ईदृक्षकः

पुट्ठपुव्वा<स्पृष्टपूर्वाः (पूर्व = स्वार्थिक प्रत्यय) = पीटे गये

वोसज्ज-मणगारे<व्यवसृज्य+(म् = व्यञ्जनभक्ति)+ अनागारः = अपने-
को उत्सर्ग करके अनिकेत होकर

अहियासए<अध्यासीत (लुङ्के अर्थमें लिङ्) = सहन किया

नाओ <नागः = हाथी

अपडिन्नं<अप्रतिज्ञं = अकाम

पडिनिक्खमित्तु <प्रति + निष्क्रम्+त्वा (ल्यप्के लिए) = निकल कर

अदु<उत

ओट्ठमियाए<*अवष्टभितायां = निस्तब्ध मुद्रामें

परिस्सहाइं<*परिस्रवाणि = केशोंको

वोसट्ठ-काए<व्यवसृष्टकायः = शरीरको दूसरेकी कृपापर छोड़ हुए

पणयासि <प्रणतः आसीत्

रीइत्था<√ ऋ(जाना)+लङ् ३।१

१६—वसुदत्तकथा (अर्धमागधी एवं संस्कृतसे प्रभावित महाराष्ट्री)

वत्तकल्लाणो <वृत्तकल्याणः = मङ्गलकार्य सम्पन्न करके

दोन्नि <द्रौनि = दो

सत्थओ <सार्थकः = काफिला

वच्चइ <व्रजति

वच्चिहिसि <व्रजिष्यसि

घेत्तूण <गृहीत्वा

पत्थयणो <पाथेय

पोट्टे <(अव्युत्पन्न) = पेटमें (मराठीमें 'पोट')

सावय <श्रावक

रोयमाणी <√रोद (<रुद्) + शानच् + ई (स्त्री प्रत्यय) = रोती हुई

पत्थिया <प्रस्थिता

उत्तारेऊण <उत् + तारि + त्वान = उतारकर

निसिरियचलणा <निशीर्यचरणा = पैर जिसके फिसल गये

उदगब्भासे <उदकाभ्याशे = पानीके पास

अप्पओ <आत्मकः

छूढो <√क्षुभ् + क्त = त्यक्त

सइरं <स्वैरं = अपने आप

अल्लीया <आनीताः

काऊण <* कर्त्वान = करके

जोइओ <द्योतितः = देखा

महत्त-विहत्त-गण्डलेहं <महद् + विभक्तगण्डलेखम् = जिसपर बहुत बड़े घावका निशान था

मण्डुक्क-नासं <माण्डूक्यनासं = मेढककी तरह नाकवाला

मुण्डेऊण <√ मुण्डय् + त्वान् = मुड़ाकर

सिस्सिणी-परिवारा <*शिष्यिणी + परिवारा =

समासासेऊण <सय् + आ + श्वासय् + त्वान समाश्वस्त करके

मिल्लीणा <मिलित +

उज्जुत्ता <उद्युक्ता

१७—स्वप्नवासवदत्तम् (शौरसेनी-साहित्यिक)

अणत्थसलिलावत्ते <अनर्थसलिलावर्त्ते = अनर्थके भँवरमें
वसीअदि<वस्+ भाववाच्य–ईय– + ते = रहा जाता है
अन्देउरदिग्घिआसु <अन्तःपुरदीर्घिकासु = अन्तःपुरकी बावड़ियोंमें
सुमणोवण्णअं <सुमनोवर्णकम् = पुष्प और आलेपन
सेहालिआगुम्हआणि<शेफालिका गुल्मकानि
आइदाणि <आचितानि = चुन लिये गये

१८—अभिज्ञानशाकुन्तलम् (मागधी, नागरककी भाषा भर शौरसेनी)

महामणिभाशुले <महामणिभास्वरः
लाअकीए<राजकीयः
शमाशादिदे <समासादितः
हग्गे <*अहकः = मैं
कदुअ<कृत्वा
लवेहि <लपय = बोलो
विवज्जणीअए<विवर्जनीयकः
शोत्तिए<श्रोत्रियः
वाआदि<*वातायते = आ रही है
गोउतदुआले<गोपुरद्वारे
अवशलोवशप्पणीआ <अवसरोपसर्पणीयाः
शउलाणं<श्वकुलानाम् = कुत्तोंका
महालिहलदणेण <महार्हरत्नेन
पज्जुस्सुअमणा <पर्युत्सुकमनाः = उत्कंठित
शक्खिके <साक्षिकः

१९—गाहासत्तसई (साहित्यिक महाराष्ट्री)

तिरिअवलिअमुहअन्दम्<तिर्यक्+ वलित+मुखचन्द्रम् = तिरछे मुँह किये

गइ <गतिः

वालबालुंकितन्तुकुडिलाणं<बाल + बालुंकी (अव्युत्पन्न = ककड़ी) + तनुकुटिलानाम् ककडकी बतियाके रेशेकी तरह कमजोर

जूरसु < √जूर् (<ज्वल्) + स्व = रंज न हो

छिवसु < √क्षिप् = स्व लोट् २।१ = डालो

आहिजाइए <आभिजात्यै

अग्घाइआ <आघ्रापिताः

अणुहू-असुर आइं <अनुभूतसुरतानि

संमरन्तीए<संस्मरन्त्याः

वज्झपडहो <वध्यपटहः

कइअवरहिअं <कैतव + रहितम्

रूअं <रूपं

विओइअं <वियोजितम्

ओअन्तकरअलोग्गलिअवलअमज्झट्ठिअं <उपान्त + करतल + उद्ग-लित + वलय + मध्यस्थितं

दिअहद्धे<दिवसार्धे

कुड्डो <कुड्य = दीवाल

कलिज्जिहिसि<कलय् + भाववाच्य (इज्ज) + लृट् २।१ = लखली जाओगी

पुप्फुआसुअन्धेण<करीष (प्रप्फुआ = अव्युत्पन्न) + सुगन्धेन

जुण्णबडएण<*जूर्ण (जीर्ण) वटकेन

आअअग्गिवो<आयतग्रीवः = गर्दन उठाकर

पाउसआले<प्रावृट् काले

सोत्तुं <*स्वप्तुं

वलाअपन्ति <वलाकापंक्ति

बोलीणे <(अव्युत्पन्न) = उक्ते

छीरेकपाइणा <क्षीरैकपायिना = (१) दूध लेते हुए (२) दूध पीते

दिण्णजाणुवडणेण <दत्तजानुवदनेन = (१) घुटनेके बल चलते हुए (२) गिरे हुए

वाआइ <वाचया

गहिअत्थो <गृहीतार्थः = समझदार

दुस्सिक्खिअरअणपरिक्खएहिं <दुःशिक्षितरत्नपरीक्षकैः = अनाड़ी रत्न-पारखियों द्वारा

मुल्लकहा <मूल्यकथा

पक्ककोइत्थाणं <पक्वकपित्थानाम्

विहि <विधिः

पम्हुसइ <प्रभृशति = मिटा देता है

मुक्कोअआइं <मुक्तोदकानि

सिअब्भाइम् <सिताभ्राणि

अवहावासेसु <अपथोपपार्श्वेषु

साणचिक्खिल्लं <श्यान पङ्कम् (चिक्खिल्लं = अव्युत्पन्न)

२०—पाहुडदोहा (अपभ्रंश, पूर्वावस्था)

पिक्खिवि <प्रक्ष्+इवि (ल्यप् अर्थमें)

वम्म <ब्रह्म

वावरइ <व्यापारयति

एत्तडउ <एतावत्कः (डक = द्विगुणित स्वार्थिक प्रत्यय)

धुत्तिम <धूर्त्तिमान = धूर्त्तता

छण्डिवि <छर्दयित्वा = छोड़कर

२१—भविसयत्तकहा (अपभ्रंश, मध्यावस्था) अर्धमागधीसे प्रभावित

महल्लमहुज्जमविज्जेम् <महत्वं महोद्यम विद्यया

बन्धुयत्तु <बन्धुदत्तः

जलद्दियणयणी <जलार्द्रितनयनी

सिविणन्तरि <स्वप्नान्तरे

पोजलन्तहो <*प्रज्वलन्तस्य

मोहियइम् <मोहितानि

दोहियइम् <द्रोहितानि

२२—वज्जालग्गम् (अर्धमागधीसे प्रभावित महाराष्ट्री)

पाइयकव्वं <प्राकृत काव्यम्

तत्ततत्तिं <तत्त्वतन्त्रीम्

सोयार <श्रोतारः

उययस्स <उदकस्य

तित्ति <तृप्ति

देसियसद्दपलोट्ठं <देशिक शब्दपर्यस्तम्

कत्तो <*कत्तः = कुत्त, कहाँसे

सविज्जो <स+विद्यः

अत्थयन्तस्स <अर्थयतः

अद्धंचिय <अर्ध+चैव

ववसायसायरे <व्यवसाय+सागरे

फुडं <स्फुटम्

२३—सन्देशरासकम् (अवहट्ठ, उत्तरावस्था)

तियलोए <त्रिकलोके

उइयम्मि <उदिते

णवरंग-चंगिमा <नवरंग-सौन्दर्या (चंग = सुन्दर)

गहिल्ली <*गृध् = काम्म

मियच्छि <मृगाक्षि

इक्किण <एकेन

हुन्तउ <भवन्त्+कः (परसर्ग पञ्चमी के अर्थ में)
अयन्निवि<आकर्ण्य
ससिउ <*श्वस्य
दीहुण्हउ<दीर्घोष्णकम्
जालन्धरि <जालन्धरी = कदली
वज्जरिउ<*वद्य+त (>ड>र) + कः = बोल उठी
विरह-उल्हावयरु <विरह+उल्लासकरः = विरह शान्त करनेवाला
णिद्दयरु<निर्दय + टः (डो> रो> रु)
मोडिवि = मोड़कर
रेणुक्करडि <रेणु+उत्कर+टी = धूलिसमूह
सन्नेहडउ <सन्देशटकम्
विरह-पहर <विरहप्रहरे
संचूरिआइ<सञ्चूर्णितानि
अज्ज-कल्ल संघडउसहे <अद्यकल्य + सङ्कट+उत्साहे = आज-कल
मिलनेके उत्साहमें
तग्गन्ति <टँगे हुए हैं।

२४—कीर्त्तिलता (उत्तरकालीन अवहट्ठ)

काञि = कैसे
मोञे = मया
भलञो = भले
विज्जावइ-भासा <विद्यापति भाषा
निच्चई <निश्चयं
जणावञो<ज्ञाययामि
छइल्ल <*छविल्ल = छैला
जंपञो <जल्पामि

२५—प्राकृतपैंगलम् (उत्तरकालीन अवहट्ठ)

बाहहि <वाहसि

गिमि <ग्रीवायां

गउलाविइ <गौडाधिपतिः

घित्ता<घृत

ढोल्ला = ढोल

पअब्भर <पदभर

णह<नभः

झम्पइ <झँप जाय

उठाअण <उत्थापन = आँगन, चबूतरा

वणअपरा <विनयपरा

वरिसा समआ<वर्षासमयः

राहा-मुह-महु <राधामुखमधु

चेलु<चैलं = चीर

मुणि = मुनिः

मअगल<मदकल

कमण = कौन

२६—रत्नावली (साहित्यिक शौरसेनी)

असामण्णरूवसोहा<असामान्य + रूपशोभा

पडिवादेसुत्ति<प्रतिपादयस्व = सौंप दो

पट्टंसुअजुअलं <पट्टांशुकयुगलं

अदिणिग्घिणं<अतिनिर्घृणम् = अतिनिर्दय

पत्थावे <प्रस्तावे

पेक्खिअ<प्रेक्ष्य

सामण्णदुल्लहेण<सामान्यदुर्लभेण

२७—कर्पूरमञ्जरी (शौरसेनी)

हलिद्दीए <हरिद्रया

ओल्लोल्लाइ <उष्णोष्णया

णउग्गदिन्दुमहुरच्छाअस्स <नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य

भमरकवलिअन्ता <भ्रमरकवलितान्ताः

सवणपहणिविट्ठा<स्वप्नपथ निविष्टा

कन्दोट्टेण = कमलसे

कोड्डेण <कौतेन = कुतूहलवश

जहिच्छं <यथेच्छम्

जिदवंसरोअणो <जितवंशरोचनः

णवमोत्तिअत्तणं<नवमौक्तित्वम्

ईसीसि<ईषत् + ईषत् = हल्की हल्की

करण्डिआए <करण्डिकासु = पेटियोंमें

रज्जन्ति<रज्यन्ते = फबते हैं

पडिसुविणएण <प्रतिस्वप्नकेन

२८—गउडवहो (महाराष्ट्री-आठवींशती)

जयमिणमो = जयं (जगत्)+इणमो (इदं)

अमोयघणं<आमोदघनं

लायण्णं<लावण्यम्

पयय-च्छायाएँ<प्राकृतच्छायायाम्

पययस्सवि <प्राकृतस्य+अपि

पयईओ <पदव्यः

विणडेइ<विनटयति = बिडम्बयति

वियय-पउत्ता <विजयप्रवृत्ता

मउलउ<*मुकुलतु = मुकुलित हो

वण-लयाण <वनलतानां

तलिणं <सूक्ष्मे (<तलिनम्)

सामण्ण-मइत्तणेण<सामान्यमतित्वेन

अउच्चेय<अतश्चैव

कउत्तमासंगा <कवि+उत्तम+आसङ्गाः

णिव्वाडन्ताण<निवर्त्तयमानाणाम्

विम्हयमुवेन्ति <विस्मयमुपयान्ति

२९—मृच्छकटिकम् (शौरसेनी, स्थावरक की भाषा भर मागधी)

जूदिअरो <द्यूतकरः

णिज्झाइदो <निर्ध्यातः

बहिणिआए <भगिनिकायाः

सअडिआए <शकटिकया

कीलम्ह <क्रीडाम

सोवण्णसअडिअं <सुवर्णशकटिकाम्

साअदं <स्वागतम्

पडिवेसिअगहवइदारअकेरिआए <प्रतिवेशिक+गृहपति+दारक+कार्यकया

पोक्खरवत्तपडिदजलबिंदुसरिसेहिं <पुष्कर+पत्र+पतित+जल विन्दुसदृशैः

कीस अलंकिदा <कस्मात् अलंकृता

ओहालिअं <अपधारितम्

पक्खदुआलए <पक्षद्वारके

णश्शालज्जुकडुआ <नस्यारज्जु कटुकाः = नाथ के बड़े तीखे

विशुमलिदे <विस्मृतः

लाअशालअ शंडाणेण <राजश्याल संस्थाकेन

ओशलध <*अपसरथ (अपसरत)

अवले <अपरः

शहिअं <सभिकम् = जुआ खिलानेवाले

चक्कपलिवट्टिं <चक्रपरिवृत्तिम्

एआई <एकाकी

पलिश्शंतश्श <परिश्रान्तस्य

सएसु <स्वकेषु

गुत्तिअं <गुप्तिकाम् = कारागार

३०—अपभ्रंशमुक्तकसंग्रहः (उत्तरकालीन अवहट्ट)

दिअहडा <दिवसटाः

वल्लइ = फेंक देता है

सायरु <सागरः

गोवइ<गोपयति

वाएं<वातेन

वम्महु<मन्मथः

उड्डावन्तिअए<*उड्डापयन्त्याः

महिहि <मह्याम्

फुट्ट <स्फुटित

अन्नहिं <अन्यस्मिन्

भद्दवउ <भाद्रपदः

माहउ <माघकः

सुहच्छीतिल-वणि<सुखासिका+तिलवने = चैनके तिलोंमें

मुद्धि <मुग्धे

निहालहि<निभालय

गयण-यलु <गगनतले

जोण्ह <ज्योत्स्नां

अम्वणु<*अम्लनं= खटाई, लगाव, ललक

उव्वरिअ <उर्वरितः = छोड़ दिया

भग्गा<भग्नाः = भागे

पारक्कडा<*पारक्यटाः = शत्रुके

लहुईहुआ<लघुकीभूतः = छोटा हो गया

अब्भत्थणि<अभ्यर्थने

वड्डत्तणउं = बड़प्पन

खल्लिहडउं<खल्वाटकम्

बप्पीकी< = पिताकी

भुंहडी<भूमिटी

चम्पिज्जइ<=दबाई जाती है

पाणिउ <पानीयम्
नवइ <नवके
सरावि <शरावे
पइसीसु <प्रविष्ट हो जाऊँ

३१—रावणवहो (महाराष्ट्री)

विक्कमणिहसं <विक्रमनिकषम्
आढत्ता <आरब्धा
भमिरुच्छङ्गम् <भ्रमिरोत्सङ्गम्
णहसाअरन्तरालुद्देसो <नभः सागरान्तरालोद्देशः
वडन्ता <पतन्तः
सअलमहिवेढविअडो <सकलमहीवेष्ट विकटः
पिहुलवलन्तणिअओज्झरपरिक्खित्ता <पृथुलवलत् निज + अवज्झर परिक्षिताः
मारुअभिरिज्जन्ता <मारुतभ्रियमाणाः
णिअदुमोसरिअकुसुमरअधूसरिआ <निजकद्रुम + अपसृत+कुसुम-रजः + धूसरिताः
फेणकुसुमन्तरुत्तिण्णकेसराआरवेविरमऊहाइं <फेन कुसुमान्तरोत्तीर्ण केसराकारवेपिर + मयूखानि
मूलुक्खुहिअं <*मूलोत्क्षुभितम्
पल्हत्थन्ति <*पर्यस्तन्ति (नामधातु)
पाआलुम्हगिरिधाउकद्दमिअमुहा <पातालोष्मगिरिधातुकर्दमितमुखाः
मोत्ताअब्भिणसोणिअभरेन्तुकुहकंदरा <मुक्तागर्भितशोणितभरत्कुह-कन्दराः
ओवइअमअरणिद्दअलुअगत्तावरविसण्ठुला <अवपतितमकरनिर्दयलून-गात्रावरविसंष्ठुलाः
कइणिवहा <कपिनिवहाः
गिरिधाउक्खित्तसलिलरेइअभरिअम् <गिरिधातोत्क्षिप्तसलिलरेचित-भरितम्